KUMARPAL CHARITAM

of

ACHARYA HEMA CHANDRA

(First & Second Chapter only)

[With Text, Hindi Translation and Critical Study etc.]

Edited and Translated by

Prof. Dr. RAJA RAM JAIN

&

Dr. (Smt.) VIDYAWATI JAIN

Published by

a Bharati Prakashan

Arrah

आचार्य हेमचन्द्र-कृत

कुमारपालचरित

(केवल प्रथम और द्वितीय सर्ग)

[मूल, शब्दार्थ, हिन्दी-अनुवाद तथा समीक्षा]

सम्पादन एवं अनुवाद

डॉ० राजाराम जैन
युनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं
अध्यक्ष, संस्कृत-प्राकृत-विभाग
ह० दा० जैन कॉलेज, आरा (बिहार)
(मगध-विश्वविद्यालय)

एवं

डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन
हिन्दी-विभाग, म० म० महिला-महाविद्यालय, आरा (बिहार)
(मगध-विश्वविद्यालय-सेवान्तर्गत)

प्रकाशक

प्राच्यभारती प्रकाशन
आरा

प्रकाशक :
राजेश पंकज जैन
महाजन टोली, नं० २
आरा (बिहार)
पिन : ८०२३०१

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण
सन् १९८८ ई०

मूल्य : १२·०० मात्र

मुद्रक :
एकेडेमिक प्रेस
पटना-६
नालन्दा कम्पोजिंग एजेन्सी
पटना-६

विषय-क्रम

भूमिका

'कुमारवालचरियं' ('कुमारपालचरित') आचार्य हेमचन्द्र द्वारा लिखित शास्त्रीय महाकाव्य की कोटि की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका अपर नाम 'द्व्याश्रयकाव्य' भी है। 'द्व्याश्रयकाव्य' का अर्थ होता है– दो विषयों का आश्रय लेकर लिखा जानेवाला काव्य। आचार्य हेमचन्द्र ने इस महाकाव्य द्वारा जहाँ एक ओर अणहिलपुर के राजा कुमारपाल के जीवनचरित को कलात्मक रूप प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर उसके माध्यम से उन्होंने प्राकृत-व्याकरण के नियमों को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस काव्य में आठ सर्ग हैं। प्रारम्भिक छह सर्गों में महाराष्ट्री-प्राकृत के नियम एवं उदाहरण वर्णित हैं और शेष दो सर्गों में शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची एवं अपभ्रंश-भाषा के नियम एवं उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

प्राकृत के महाकाव्यों में 'कुमारपालचरित' का वही स्थान है, जो संस्कृत में 'भट्टिकाव्य' का। 'भट्टिकाव्य' के प्रणेता महाकवि भट्टि ने अपने इस काव्य में एक ओर श्रीराम के पावन चरित का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर उन्होंने पाणिनि-व्याकरण की भी शिक्षा प्रदान की है। अतः, संस्कृत में 'भट्टिकाव्य' एवं प्राकृत में 'कुमारपालचरित', ये दोनों ही काव्य 'द्व्याश्रयकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस शैली की रचना में विशिष्ट प्रकार की प्रखर प्रतिभा की आवश्यकता रहती है, जो सभी कवियों के लिए सम्भव नहीं।

इस पुस्तक में 'कुमारपालचरित' के केवल प्रथम एवं द्वितीय सर्ग को आकलित किया गया है। प्रथम सर्ग में गुजरात-प्रान्त में स्थित

अणहिलपुर नाम के नगर का सुन्दर वर्णन किया गया है। वहाँ के राजा चालुक्यनरेश सम्राट् कुमारपाल के बल-वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, उदारता, अहिंसक नीति, दानवीरता एवं साहित्य तथा साहित्यकारों के प्रति सम्मान-भावना का चित्रण किया गया है।

द्वितीय सर्ग में व्यायाम के विविध प्रकार बताये गये हैं। कुमारपाल हाथी पर सवार होकर कुमार-विहार के जिन-मन्दिर में दर्शनार्थ जाता है और वहाँ जिनेन्द्र-स्तुति एवं पूजा आदि सम्पन्न करके, वहाँ के संगीत-सम्मेलन में भाग लेकर अपने राजप्रासाद धवलगृह में लौट आता है।

वर्णन-प्रसंगों के अनुसार राजा कुमारपाल ने अपने भुजबल से पृथिवी को जीता था। वह न्यायपूर्वक निष्पक्ष शासन करता था। प्रातःकाल में महाराष्ट्र आदि देशों से समागत स्तुतिपाठक अपनी स्तुतियों द्वारा उसे जगाते थे। जागने के बाद वह प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त करता था। तत्पश्चात् तिलक लगाकर वह धृष्ट एवं अधृष्ट सभी लोगों की विज्ञप्तियाँ एवं प्रार्थनाएँ सुनता था। उसके बाद वह मातृगृह में जाकर लक्ष्मी-पूजा करता और फिर व्यायाम करने हेतु व्यायामशाला में प्रवेश करता था। कवि का यह वर्णन प्रौढ भाषा एवं आलंकारिक शैली में हुआ है।

'कुमारपालचरित' के लेखक आचार्य हेमचन्द्र का प्रारम्भिक नाम चांगदेव था। उनकी कुलदेवी का नाम चामुण्डा एवं कुलयक्ष का नाम गोनस था। उनके पिता का नाम चाचिगदेव तथा माता का नाम पाहिणी देवी था। ये दोनों शैवधर्म के अनुयायी थे। इन्हीं के यहाँ आचार्य हेमचन्द्र का जन्म वि० सं० ११४५ (सन् १०८८ ई०) की कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन हुआ था। बड़े होने पर जैनाचार्य देवचन्द्र

सूरि से प्रभावित होकर वह जैनधर्मानुयायी हो गये और आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए। सम्राट् जयसिंह सिद्धराज उनकी अगाध विद्वत्ता एवं पाण्डित्य से प्रभावित होकर उनका शिष्य बन गया और सम्राट् की प्रेरणा से उन्होंने 'सिद्धहैमव्याकरण' की रचना की, जिसके सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा का तथा अन्तिम एक अध्याय में प्राकृत-भाषा का व्याकरण लिखा।

सम्राट् जयसिंह सिद्धराज की मृत्यु के बाद सम्राट् कुमारपाल का शासन आया। उसने भी आचार्य हेमचन्द्र को अपना गुरु माना। उसकी सेवा एवं भक्ति-भावना से प्रभावित होकर हेमचन्द्र ने उसकी कीर्त्ति को स्थिर बनाये रखने के लिए 'कुमारपालचरित' अथवा 'द्व्याश्रयकाव्य' की रचना की।

आचार्य हेमचन्द्र की कठिन तपस्या, प्रखर प्रतिभा, साहित्य-साधना एवं कार्यक्षमता अद्‌भुत थी। साहित्य, काव्य, दर्शन, योग, अलंकार, कोश, छन्द, व्याकरण, निघण्टु आदि विषयों पर उनका समानाधिकार था। यही कारण है कि उन्होंने अनेकविध ग्रन्थ लिखे। यहाँ उनके कुछ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :

१. **पुराणकाव्य** : इस शैली में उनका 'त्रिषष्टिशलाकामहापुरुष-चरित' नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में तिरसठ महापुरुषों का काव्यशैली में सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके अध्ययन से यूरोपीय विद्वान् प्रो० डॉ० जॉनसन इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने इसका अँगरेजी-अनुवाद भी किया था, जो विशाल चार खण्डों में बड़ौदा ओरियण्टल सीरीज में छपा था। उक्त ग्रन्थ का परिशिष्टपर्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिससे मगध के नन्द-साम्राज्य की समय-सीमा तथा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के जीवन एवं इतिहास से सम्बद्ध अनेक तथ्यों पर समीचीन प्रकाश पड़ता है।

२. **चरितकाव्य** : इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

३. **व्याकरण** : आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-ग्रन्थ 'सिद्धहैमशब्दानु-शासन' की यूरोपीय प्राच्यविद्याविदों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इसे उन्होंने ज्ञान-विज्ञान का अमूल्य स्रोत माना है। उन्होंने इसे पंचांग व्याकरण का ग्रन्थ कहा है; क्योंकि यह सूत्रपाठ, धातुपाठ, उणादि-प्रत्यय एवं लिंगानुशासन से युक्त है। इस ग्रन्थ में लगभग ५,००० सूत्र हैं। इसपर उनकी 'स्वोपज्ञ' वृत्ति भी उपलब्ध है।

४. **कोशग्रन्थ** : इस विधा के साहित्य में उनके 'अभिधानचिन्तामणि', 'अनेकार्थसंग्रह', 'निघण्टु' एवं 'देशीनाममाला' नामक ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध हैं। 'देशीनाममाला' तो अपनी कोटि का प्रथम ग्रन्थ है, जिसका सर्वप्रथम सम्पादन सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० पिशेल ने किया था।

५. **अलंकारग्रन्थ** : अलंकारशास्त्र पर उनका 'काव्यानुशासन' नामक सांगोपांग ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। इसकी यह विशेषता है कि ग्रन्थकार ने इसमें स्वयं ही सूत्रों एवं उदाहारणों के साथ-साथ 'अलकार-चूडामणिवृत्ति' एवं 'विवेक' नाम की वृत्ति लिखी है। प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय-क्रम आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश के अनुसार है।

६. **छन्दःशास्त्र** : छन्द के लक्षणों पर उनके द्वारा लिखित 'छन्दोऽनु-शासन' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

७-८. **न्याय एवं योगशास्त्र** : न्यायदर्शन और प्रमाण तथा प्रमेय का विवेचन-विश्लेषण करने हेतु 'प्रमाणमीमांसा' और योगध्यान एव समाधि की विवेचना करने हेतु 'योगशास्त्र' नाम की इनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

९. **स्तोत्र** : स्तोत्र-शैली में लिखित आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों से ओतप्रोत इनकी 'द्वात्रिंशिकाएँ' प्रसिद्ध हैं।

आचार्य हेमचन्द्र सम्राट् जयसिंह सिद्धराज एवं सम्राट् कुमारपाल के गुरु थे। अतः, उनके दरबार में उनका बड़ा सम्मान था। गुजरात की तत्कालीन राजनीति तथा अर्थ एवं उद्योगनीति आचार्य हेमचन्द्र के विचारों से प्रभावित थी। भारतीय इतिहासकारों ने उक्त दोनों सम्राटों को अद्भुत पराक्रमी एवं तेजस्वी वीर योद्धा के रूप में वर्णित किया है, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने उनकी रणनीति को छोड़कर, उन्हें अपने प्रजाजनों, विशेषतया दीन-दुःखी एवं अनाथ तथा पिछड़े वर्ग के लोगों तथा आदिम जातियों के प्रति विशेष उदारता बरतने एवं राज्य में अमारी (अर्थात्, जंगलों के निरपराध प्राणियों के शिकार न करने) की घोषणा करने का आदेश दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर अपने पूरे देश में लागू किया। विद्वान् इतिहासकारों का कथन है कि गुजरात और सौराष्ट्र में आज भी जो सरलता, सात्त्विकता, अहिंसा एवं निर्भीकता का वातावरण है, वह सब आचार्य हेमचन्द्र की ही देन है।

इस प्रकार, हेमचन्द्र भारतीय सन्त-साधुओं, विचारकों एवं लेखकों की श्रेणी में सर्वोच्च आचार्य सिद्ध होते हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि वह १२वीं सदी की सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण विधायक कड़ी के रूप में अवतीर्ण हुए, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए, परवर्त्ती श्रेण्य मनीषियों ने 'कलिकालसर्वज्ञ' के रूप में भी उनका स्मरण किया है।

शिवरात्रि
१६ फरवरी, १९८८ ई०
महाजन टोली, नं० २
आरा (बिहार) : ८०२३०१

● राजाराम जैन
● विद्यावती जैन

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२२	अदोहाउस	अदीहायुस
२	१५	अणज्जिओ	अणंजिओ
२	१६	लुटय	लुंटाय
२	१६	संठा	संठो
४	६	गुणि-वणाणं	गुणि-जणाणं
४	१४	गोअ	गीअ
४	१८	सव्वण्ण	सव्वण्णु
६	७	मणिएंहि	भणिएहि
६	१६	विअम्मति	विअंभंति
६	१९	पिक्कंगअं	पिक्कंगुअं
६	१९	पिंक्किगअं	पिंक्किगुअं
६	२०	मइलं	मइल
७	५	जरढोच्छ	जरढोच्छु
७	१४	बहेडय	बहेडया
८	११	कवरीओ	कबरीओ
९	१	मसि	मसिणे
१०	५	सिधवं	सिंधवं
११	१४	चक्कवट्टीओ	चक्कवट्टी ओ
११	१६	ओ आसो	ओआसो
१५	७	वहु	बहु
१५	१२	सवलेहिँ	सबलेहिँ
१६	१३	सढिआ	दढिआ
१८	४	भाउत्त	माउत्त
३१	९	।।३४।।	।।३३।।

●

कुमारवालचरियं

पढमो सग्गो

अह पाइआहिँ भासाहिँ संसयं बहुलमारिसं तं तं।
अवहरमाणं सिरि-बद्धमाण-सामिं नमंसामो ॥१॥

अत्थि अणहिल्ल-नगरं अन्ता-बेई समाइ-निव-निचिअं।
सत्तावीसइ - मुत्तिअ - भूसिअ - जुवइ - जण - पइ हरयं ॥२॥

तिअस-वई-हर-वहु-मुह-आदरिसीहूय-फलिह-सिल-सिहरो।
जंस्सि पुहइ-वहू-मुह-अवयंसो सहइ पायारो ॥३॥

निव-सह-मुहावयंसा विइया गुरुणो अवीय-गुण-निवहा।
निवसंति अणेग-बुहा जंस्सि पुहवीस सलहिज्जे ॥४॥

न हु अत्थि न वि अ हूअं इह लोए अइसएण जस्स समं।
सुउरिस ठाणमसूरिस-रहिअं सालाहण-पुरं पि ॥५॥

जंस्सि नमंत-सीसो तियसीसो वि हु तवं तवंताणं।
तेलुक्क - सज्जणाणं थुणइ स - भिक्खूण सद्धाए ॥६॥

जत्थोन्नय-थण-नीसह-वहु-दंसण-निस्सहं नरा जंति।
दुसहाउ दुस्सहेण मयणेण हयंतरप्पाणो ॥७॥

तेअ-दुरालोएहिं अंतो-उवरिं घराण रयणेहिं।
छूढव्व निरवसेसा सरिआहिव-संपया जत्थ ॥८॥

विज्जु-चल महुर-गिरो दिंतो लच्छि जणो छुहत्ताण।
भिसओ खु जहा सरओ दिसाण पाउस-किलंताण ॥९॥

जत्थच्छरस-मण-हरो बहूहि रमिरो वि अच्छर-समाहिं।
दीहाऊ वि अदोहाउस-माणी सइ विवेइ-जणो ॥१०॥

कुसुम-धणू धणुह-धरो कउहा-मुह-मंडणम्मि चंदम्मि।
रज्जं तमेग-छत्तं असकमुवभुंजए जत्थ ॥११॥

रोमंच - कंटइल्लो संझाए वंक - जंपण - छइल्लो।
जत्थ मणंसिल-तिलओ विलसइ अहिसारिआ-लोओ ॥१२॥

जत्थ भवणाण अवरिं देवं नागेहिं विम्हया दिट्ठो।
रमइ मणोसिल-गोरो मणसिल-लित्तो मयच्छि-जणो ॥१३॥

पव्वेसु अपव्वेसुं जत्थ मुणीणं कमेण अकमेणं।
काऊण पडिवत्तिं हरिसं काऊण देइ जणो ॥१४॥

वीस-गुणो तीस-गुणो कलि-कालो नूण जत्थ कय-जुगओ।
नूणं अणभुंजंते लोए मासं स-मंसं व ॥१५॥

जस्सि सकलंकं वि हु रयणी-रमणं कुणंति अकलंकं।
संखघर - संख - भंगोज्जलाओ भवणंसु - भंगीओ ॥१६॥

लंघिज्जइ नालंघं वंचिज्जइ न हु अवंचणिज्जं च।
वंछिज्जइ न वि जस्सि अवंछणिज्जं च केणावि ॥१७॥

वंजिअ-सत्तो सत्ती-अणज्जिओ सत्ति-वंझ जण - वंझो।
लुंटय लुंटणो संठे संठा जत्थ निव-लोओ ॥१८॥

उद्दंड-बाहु-दंडा जस्सिं कुंढासहा सयमकुंढा।
कंतंगा कंत-गुणा नय-पंथे पंथिआ पुरिसा ॥१९॥

चंदुज्जाण व चंदो वंफिय-बंधूण बंधवो जस्सि।
अणुकंप-कंपिअ-मणो विहवि-जणो वंफए धम्मं ॥२०॥

लंबंत - लुंबि - रंभारंभिय - तोरण - निरुद्ध - संरंभो ।
स वि पाउसम्मि व न जत्थ दीसइ फुडो तरणी ॥२१॥
जत्थ चुलुक्क-निवाणं परिमल-जम्मो जसो कुसुम-दामं ।
नहमिव सव्व-गओ दिस-रमणीण सिराइँ सुरहेइ ॥२२॥
सव्व-वयाणं मज्झिम-वय व सुमणाण जाइ-सुमणं व ।
सम्माण मुत्ति-सम्मं व पुहइ-नयराण जं सेयं ॥२३॥
चम्मं जाण न अच्छी णाणं अच्छीइँ ताण वि मुणीण ।
विअसंति जत्थ नयणा किं पुण अन्नाण नयणाइं ॥२४॥
गुरुणो वयणा वयणाइँ ताव माहप्पमवि य माहप्पो ।
ताव गुणाइं पि गुणा जाव न जंसि बुहे निअइ ॥२५॥
हरि-हर-विहिणो देवा जत्थन्नाइँ वि वसंति देवाइं ।
एआए महिमाए हरिओ महिमा सुर-पुरीए ॥२६॥
जत्थंजलिणा कणय-रयणाइँ वि अंजलीइ देइ जणो ।
कणय-निही अक्खीणो रयण-निही अक्खया तह वि ॥२७॥
तत्थ सिरि-कुमरवालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो ।
सुपरिट्ठ-परीवारो सुपइट्ठो आसि राइंदो ॥२८॥
तुह आणा-ओमालं सिरम्मि धरिमो जहा अणिम्मल्लं ।
अम्हे एत्थाम्हेत्थ य इअ भणिउं जो निवेहि नओ ॥२९॥
तुह हरि-पिआ जइ इमा किं पि पिआ किमवि मेइणी जइमा ।
ता किं ति मए त्ति रुसेव जस्स कित्ती गया दूरं ॥३०॥

जो दूसासण-रिउणो आसत्थामस्स राम-सीसस्स ।
वीसामिअ-जस-पसरो स-जसेणं कासवि-तलम्मि ॥३१॥

वीसुं वासा-नीसित्त-महि-अले ऊस-मालि-तेअस्स ।
रज्जे जस्स न कासवि नीसत्तं नीसहत्तं वा ॥३२॥

गुण-सामिद्धी पयडा कला-समिद्धी वि पायडा जस्स ।
जो दाहिण-पवण-निही दक्खिण्ण-निही गुणि-वणाणं ॥३३॥

सिविणम्मि वारण-बलं सुमिणम्मि अ आस-साहणं जस्स ।
दिण्ण-भयं पिच्छंता दत्त-करा रिउ-निवा जाया ॥३४॥

अंगार-पिक्क-गोल्ले खाए इंगाल-पक्क-कंदे अ ।
तत्त-निलाडा रिउणो जस्स णलाडं-तवे तवणे ॥३५॥

कइमं मज्झिम-लोए रिऊहिँ चत्तं न छत्तिवण्ण-वणं ।
नव-छत्तवण्ण - परिमल-मए गए जस्स संभरिउं ॥३६॥

अमयमइओ व्व अहवा अमयमयाओ वि समहिओ जस्स ।
हर-हीर-पिआहि वि जस-गोअ-झुणी सुव्वए वीसुं ॥३७॥

अखुडिय-पडिहा-पसरस्स अग्गओ जस्स दप्प-कंडूलं ।
खंडिअ-नाणप्पडिहं बुहं-चुडं गउअ चंडं व ॥३८॥

असि-पुढ़मो धणु-पुढमो छुरिया-पढ़मो अ सेल्ल-पढमो य ।
सव्वण्ण व्व अहिण्णू जो सयल-कला-कलावस्स ॥३९॥

उर-मेज्जाइ वि हरिणो सुंदेर-घरम्मि सइ सिरी अथिरा ।
जस्स गण वेल्लि-तरुणो थिरासि भू-वल्लि-पेरंते ॥४०॥

जस्स य दिस-पज्जंते अहरिअ-जोण्होक्करो जसोक्केरो ।
अच्छेर निरीहाण वि अच्छरिअं किं व न करेइ ॥४१॥

जो आसि बंभचेरग्गहण-गुरु पइ-विओअ-विहुरस्स ।
रण्णंतरगय-रिउ अंतेउर पोम्मच्छि लोअस्स ॥४२॥

पय - पउम - नमोक्कारे परोप्परामद्द - तुट्ट - हारेहिं ।
जस्स सहाइ निवेहिं ओप्पिअमिव मुत्तिआहरणं ॥४३॥

जत्थप्पिअ-भू-भारो सुवइ फणी तत्थ सोवइ हरी वि ।
जौन्नत्थ-दिन्न-भारो न-उणाइ सयालुओ न उणा ॥४४॥

जइ सक्को न उण नरो न उणो नारायणो वि सारिच्छो ।
जस्स पुणाइ पुणाइ वि भुवणाभय - दाण-ललिअस्स ॥४५॥

रण्णे अरण्ण-साणाउलम्मि लाऊ-लया हरे रुन्नं ।
जस्सारि-वहूहि तहा अलाउ कुल्ला जह कयाओ ॥४६॥

उक्खय-संठविअ-निवेण जेण वच्छत्थलाओ हरिणो वि ।
उक्खाया भुय-दंडे निअम्मि संठाविया लच्छी ॥४७॥

अह कइया वि दिवा सुह-पत्थावे पत्थवोचिअं तस्स ।
अणुरागागय - मरहट्ठमाइ - सूएहिँ इअं पढिअं ॥४८॥

हय-मसल-तम-पसरो सइ वामो पंसुलाण पच्चूसो ।
सामय-वय दिन्नग्घो तं व पयट्टो सया पुन्नो ॥४९॥

दिस कुप्पिसंत-जस भर देवय हरए तुमं सकुप्पासा ।
दिक्खाइरिआ सिक्खायरिएहि सहावसप्पंति ॥५०॥

गय-थीण-तिमिर-केसे खल्लीडे नह-सिरम्मि संवुत्ते ।
थुवआ हवंति लोआ एण्हि सुण्हाल-चिघस्स ॥५१॥

गयणे तुहिणोसारिणि तुहिणासारं पडंतमगणंता ।
उट्ठंति वहूओ पुरो अज्जूणं विणय-गेज्झाणं ॥५२॥

कुट्टिम-चउ-वारेसुं सतिण्हमिण्हि कुणंति रमणीओ ।
देरागय - पारावय - रावोट्ठिय - पिअ परीरम्भं ॥५३॥

पारेवय-मणिएहि तेत्तिअमेत्तं रमेसु वेसाओ ।
तेत्तिअमत्तं मग्गंति चलिअमेत्ते भुअंगम्मि ॥५४॥

अद्द-नहंकाण पियाण अल्ल-आलावयाण विलयाओ ।
उल्लंति अंकमंसुअ - ओल्लीहिँ ओल्ल - नक्खंका ॥५५॥

निअ-ठाण-मोलणं पिक्खिऊण चिंता-परा मिउल्लावा ।
नीलुप्पल-पेंडे पिंडिऊण भसला रुअंति व्व ॥५६॥

किंसुअ-कुसुमायंबो केंसुअ-दल-सामल-विगय-मेरं ।
दलिऊण अंधयारं दंसई पुहवीइ पहमरुणो ॥५७॥

काउं महाविलं अतम-मूसयं कय-पडसुए सूरे ।
लक्ख हलद्द-बहेडय रत्त व्व करा विअम्भंति ॥५८॥

विरइअ हलद्दि-कंदाभ-दीवओ नव हलिद्दि-रत्त-करो ।
अहलिद्दा राओ कामउ व्व पुव्वं भअइ सूरो ॥५९॥

पिक्कंगअं व निवडइ पिक्किगअ-धूसरो ससी एस ।
सिढिल-करो सढिलंगो तित्तिर-मइलं-प्फुड-कलंको ॥६०॥

इअ आसंसंति नि-सीह सिहदत्ताइणो दिआ तुज्झ।
वीस-तीस-कप्पे जयसु दुजीहारि नीसंकं ॥६१॥

अदुइअ-रवि भा-विइए गयणे जह पाइयम्मि दो-वयणं।
कत्थ वि नत्थि तमो अहिनिवास-लोअम्मि व णुमन्नो ॥६२॥

जरढोच्छ-रुई चंदो निस पिअ-पावासुओ व्व नो सहइ।
सच्च-जहुट्ठिल सूरे भू-सग्ग-दुहाइअ-करोहे ॥६३॥

घम्मे जहिट्ठिला दोहाइअ-पवहा दुहा वि मल-पटलं।
ओज्झर-निज्झरिणीसुं ण्हाऊण खिवन्ति वम्हाणा ॥६४॥

हय-कम्हार-हरडई चिक्किण-तिमिरस्स गहिय-पाणीया।
पाणिय-तडम्मि विप्पा अजुण्ण-सूरस्स दें तग्घं ॥६५॥

जिण्ण-तमं मल-हीणा अहूण-तेअं विहीण-अन्न-पहं।
अविहूणं तूह-दिआ थुणंति तित्थे रविं तं व ॥६६॥

पेऊसासण-सामिय दिस-आमेले रविम्मि उअ तारा।
केरिस एरिसिआओ बहेडयभाओ नह-पेढे ॥६७॥

चत्तूण नेड-पीढं नीड - घरा मउलिआ मही-मउडं।
विद्दाय-निद्दमुड्डंति घरोवरिं रुक्ख-अवरिं च ॥६८॥

गरुआ वि गुरुअ-भिउडीहिं वार-वालेहिँ पडिक्खलिज्जंता।
बहु-पोरिसा वि पुरिसा निरुद्ध-छीआ इहं एंति ॥६९॥

मुसल-घर-बाहु-मूसल रइ-सूहव-सुहय तुज्झ मुह-कमलं।
दट्ठुं ऊसुअ-नयना पुणो पुणो ऊससंति निवा ॥७०॥

अणउच्छन्नोच्छाहो रिउ-दुसहो दूसह-प्पयावेण ।
वोक्कंत-निद्द-पसरो अह राया ओट्ठिओ सयणा ॥७१॥

कोऊहल-कुसलेहिं कुऊहलत्थेसु कोउहल्ली वि ।
सण्हाण वि सुण्हयरं परमप्पं थुणिय सव्वण्णुं ॥७२॥

अमलोव्वीढ-दुअल्लो उव्वूढ-दुऊल दंडि-दिन्न-करो ।
सो अत्थाणिं पत्तो दुगुल्ल - उल्लोअ - सोहिल्लं ॥७३॥

तस्य भुमयाइ वसगा अवाउला पेसणिक्क-हणुमंता ।
बल-कंडुअमाण-भुआ पुरो निविट्ठा निवा नमिरा ॥७४॥

पासम्मि ठिआ तस्स य महूअ गोराओ महुअ-महुर-गिरा ।
वज्जंत - कणय - नूउर - मणि - वइर - निउराओ ॥७५॥

कोहंडि-कुसुम-मउवीओ काम-तोणीर-थोर-कवरीओ ।
निम्मोल्लंगय - मंडिअ - कोप्परया गहिअ-तंबोला ॥७६॥

विब्भम-गलोइ-मेघा रंभा-थोणा-निहोरु थूणाओ ।
तोणीहविअ सयं चिअ रइ-वइणो तूण-छड्डवणा ॥७७॥

सरउग्गय-मय-लंछण-सरिच्छ-वयणाओ वर-जुवईओ ।
चामर-दप्पण-हत्था अक्क स-कंती किसंगीओ ॥७८॥

मत्तेभ-मउअ-गमणे तस्सिं माउक्क-आसणासीणे ।
माउक्के अमउत्ते वि सुइ-गिराणं फुड-गिरेहिं ॥७९॥

आससिअं दिएहिं किवालु-हिअओ हवेहि महि-वट्ठे ।
तुहं पिट्ठ-चरा देवा हवंतु नागा वि पट्ठ-चरा ॥८०॥

अह खग्गि-सिंग-पत्त-मसि मसणेण चंदणेण गहे।
अच्चिअ राय-मयंको अकासि तिलयं मिअंक - निहं ॥८१॥

मिच्चु-अवमच्चु-हरणे दिजे विसज्जिअ निसामिआ तेण।
रिउ-संग-भंजणेणं घिट्ठाघट्ठाण विन्नत्तो ॥८२॥

पुहवीस उउ-वसंतो निवुत्त-तिलक्खवणो कलि-निअत्तो।
वंदारय-वुंदारय समो पयट्टो तिहिं सोउं ॥८३॥

निव-उसहो दिय-वसहे पिउ-कम-माउ हर-आगए तत्तो।
दाणेण तप्पिऊणं संपत्तो माइ हरयम्मि ॥८४॥

माईण अमोसासीसयाण राया अमूस-परिवारो।
अमुसावाई वुट्ठो घण-वुट्ठी रयण-विट्ठीहिं ॥८५॥

विट्ठ-घण-निम्मलेणं देवाणं पिहय पुहय देवीणं।
तेणादिट्ठं गीअं मुइंगि कर-ताडिय-मिइंगं ॥८६॥

कुल जरईणं नत्तिअ नत्तुअ-सहिआण सो वसु अदासि।
धरणि-विहप्फइ सीसा बुहप्फइ-सरिच्छ-गुरु-पुरओ ॥८७॥

सो कुसुम विंट-तिक्ख-प्पणाइ बहप्फइ व्व लच्छीए।
काही पूअं सह-वेंट-फलेहिं स-वोंट-फुल्लेहिं ॥८८॥

रिद्धि हय अणत्त-रिणो राय-रिसी घणुह वेअ राम-इसी।
रिज्जू सहुज्जुएहिं नर-उसहेहि चलिओ निवइ-रिसहो ॥८९॥

सो वसंत-रिउ-सरि-विलासओ तह य गिम्ह-उउ-सरिस-लीलओ।
महुर-तिव्व-तेआसरिच्छओ समहरं दरिअ-आढिअं गओ ॥९०॥

बीओ सग्गो

पंकय-केसर-कंती अकिलिन्नो हरि-चवेल-चविलो सो।
स-किसर-किलित्त-दामो निवो पयट्टो समं काउं ॥१॥

गुरु-मण-थेणो रेवइ देअर-सीअ-दिअराण बल-थूणो।
काही विअणं सो सयमवेअणो मल्ल-सेलाण ॥२॥

तस्स सणिच्छर-पिउणो व्व कर-हयं सिधवं व मल्ल-कुलं।
घम्मजलोल्लं जायं स - सिन्न - परसेन्न - महिअंपि ॥३॥

मुर-वेरिओ व्व रक्खिअ-दइच्च-कय वइर-दइवय-सइन्नो।
गेण्हीअ स तत्थ धणु कइलास-सओ व्व केलासे ॥४॥

देव्वालक्खो दइवे वि असंको महि-अले नव-दइव्वं।
उच्चअ-नीचअ-लक्खे अणचुक्को अवरधीर-हरो ॥५॥

अन्नन्नं जोहेहिँ सलाहिओ तह बुहेहि अन्नोन्नं।
मण - हर - सरलिअ कुंचिअ - उहय - पवट्ठो सरे वुट्ठो ॥६॥

कण्णो वलिअ-मणोहर-पउट्ठ-कर-सररुहेण नरवइणो।
लंबिर - नाल - सरोरुहवतंसिओ व्वासि संधाणे ॥७॥

कय-दुज्जण-सिर-विअणं सिर-कुसुमाहरणमणसिरो-विअणं।
आवज्जिअ वाइअ आउज्जस्सादिट्ठ - पुड - दलणं ॥८॥

सूसास-वलिअ-चिबुओ अकासि सो गउअपुच्छ-पमुहेहिँ।
गा अंक - कोंचरिउ - सुंदेरं पत्तो धणुह - सुंडो ॥९॥
[युग्मम्]

अह कुच्छेअय-हत्थो कोच्छेअय-कउसलेण सो दिट्ठो।
कोवेस कउच्छेअय - सिद्धो त्ति असेस - पउरेहिँ ॥१०॥

अब्भास-गारवेणं गोविअ-सव्वंग-गउरवो फलए।
नावाकारे तेरह्-तेतीस-गुणो व्व सो आसि ॥११॥

घडिया अथेर-एक्कारएहि बहुएहिँ दुव्वहा सत्ती।
वेइल्ल-केल-कन्नेरयं व भामिय भुवि निहित्ता ॥१२॥

विअइल्ल-कण्णिआरय-कयलेहिँ ऐ-अइत्ति भणिरेहिँ।
जोहेहिँ बोर-पोप्फल-पोरं मन्नेहिँ सा महिआ ॥१३॥

नोमालिअ - नोहलिआ सोमालाहिँ सलोण-मोहाहिँ।
तस्सोब्भमिअँ लवण सुकुमाल-मऊह-मालिस्स ॥१४॥

चोद्दह-मणु-चोग्गुणओ भुवण-चउद्दहय-वइ-चउग्गुणओ।
चोत्थे वि जुगे ति-पुरिस-चउत्थओ लक्खिओ स तया ॥१५॥

सागोक्खल - खइरोहल - लोहाऊखल - सिला-उलूखलया।
चक्केण तेण दलिआ चोव्वारं पुण चउव्वारं ॥१६॥

इअ रइअ - कोउहल्लो कोहल-दक्खेहिँ तक्किओ राया।
उअ कण्हो एस इहं भरहेसर - चक्कवट्टीओ ॥१७॥

ओआरे अवयारक्खमेण तेणावसद्द - रहिएण।
सेल्ल - कला - अवयासे भग्गो जोहाण ओ आसो ॥१८॥

पन्नास - पलोअवगओ क्कि जलणो उअ रवि त्ति तस्स करे।
उवहसिअ परसुरामस्सूहसिए - पवी महापरसू ॥१९॥

सूल - कलाइ णुमण्णो सीर - निसण्णो अकित्ति-पंगुरणो।
सो किच्ची पाउरणं सिइ पावरणं च अणुकाही ॥२०॥

अह राय - वाडि अत्थं नाओ आणाइओ रिउ-घरट्टो ।
पुहइ - सईसेणागरु - सुरहि - मओ सुकुसुम-सुतारो ॥२१॥

सचमर - कण्णो विदुरो गय - पावो देव-दुज्जओ विजणे ।
सो धरिओ पर - वारण - कवलण - नत्तं चर-चरित्तो ॥२२॥

बालक्क - मुहो सुहकर-गज्जी सुहयर-गई अ इअ थुणिओ ।
जग आगमिओ बहुतर-आअमिअ-कलेहिँ बहुअरयं ॥२३॥

जलयर-अजलचर-वई जस्स य इंधं रुसा-पिसाजी सो ।
सुहदेसु वि सुहओ जइ एरिसओ सो उण सुरेहो ॥२४॥

अमुगो कर-आउंटण - रम्मो चाउंड काउँए तुट्ठो ।
लब्भइ अणिउत्तय - सुरहि - जउँण - जल-बहुल-मय-वट्टो ॥२५॥

अइमुत्तयँ - बिंदु - करो अइमुत्तय - गोर - दंतओ एस ।
सविमो खु साव-चविओ तिअस-गय-वरो महि-अलम्मि ॥२६॥

अच्छ-कय-कण्ण-चिउओ महु-पिंगल नयणओ मयंक-नहो ।
पियइ व लायण्णमिमो अखुज्ज - कुंभो पर - गयाण ॥२७॥

खप्पर-खीलय-कुज्जय-कुसुम-समा जस्स सेल-खंभ-दुमा ।
रुंधिअ - खासिय - छिक्कं पिक्खिज्जइ मय-गलो एस ॥२८॥

मरगय-गेंदुअ-सरिसालि-गुच्छ-गंडे निवो इहारूढो ।
जयइ चिलाए व्व परे सिरिकंठ-किराय-वीरे वि ॥२९॥

जिअ-घण-सीभर-गंगा-सीहर- चंदिम - सुसीअ - सीअरओ ।
फलिहामल-वीस-नहो निहस-प्पह चिहुरओ एस ॥३०॥

पिहु-जहणो साहु-मुहो सरिसव-खल-कडुअ-सलिलओ अथिरो ।
इह एसो निव-जोग्गो पत्तो चोत्थि मयावत्थं ॥३१॥

निव-धम्म-रओ अह सो नभम्मि पाउस-घणोव्व पिर्घमिदो ।
अप्पहिं व आसणाओ असंकलं तं समारूढो ॥३२॥

पुन्नाग-दामवंतो पुलोइओ भामिणीहि पउरोहिँ ।
छालक-देव-तेओ सुहओ रइ-सूहवो व्व निवो ॥३३॥

इंदो दुहओ चंदो वि दूहवो आसि खेअर-वहूणं ।
तस्सि दिट्ठे तइआ मणि-खसिआहरण-खइअंगे ॥३४॥

वेस-पिसाओ मुत्ती-पिसल्लओ अ झडिलो अजडिलो य ।
खट्टंग-घंट-भूसो निवारिओ न जह अटइ पुरो ॥३५॥
केढव-सयढारि-सढाल-विक्कमो फलिह-विमल-नेवच्छो ।
चविला-फालिअ-कुंभो नहं व चविडाइ फाडंतो ॥३६॥
अंकोल्ल-तेल्ल-णिद्धो असढो पिहडो कलाण सयलाण ।
लहु - जढर - पिढर - पडियार - पाडणत्ताण कय - कीला ॥३७॥
दढ - खंघ - हार - नाडि पेल्लंतो निबिड-कच्छ-नालिमिभं ।
उव्वेलु - अचुच्छंकुस - अछुच्छ - वेणूहि आवरिओ ॥३८॥
अणतुच्छ - टयर - कप्पूर - धूव - महमहिअ - टसर-सूइ-वत्थो ।
कुमर - विहारे पत्तो टूवर-पडिहार - दिन्न - करो ॥३९॥
सुपइट्ठं सुपडायं वेडिस - दल - नील - भित्ति - गब्भिणयं ।
अणिउत्तय - फुल्ल - हरं बालाण वि रुण्ण - अवहरणं ॥४०॥

बाहत्तरि - कल - सालाहण -सम-जणमलसि-कुसुम-कय-सोहं ।
पलिल-सिर-पलिअ-पीवल-करण घुसिणुमीस-ण्हवण-जलं ॥४१॥

पीअल-धाउ-विणिम्मिअ-विहत्थि- पम - माहुलिंग - आहरणं ।
भरह - जिण - भवण - सरिसं मंगल - वसहिँ - सिरी - वसइँ ॥४२॥

अध काहल-भव्व-जणं सिढिलिअ-कलि-कालमसढिलाणंदं ।
नयरस्स मेढिभूयं पढमं तित्थं व पुढवीए ॥४३॥

पुहवी निसीढ-तम-भर-निसीहिणीनाह-सरिस-जिण-विंबं ।
खंडिअ डंभिअ - दंभं उद्दंड - सुवण्णमय - डंडं ॥४४॥

डरिआणं दर-हरणं डड्ढागरु-दड्ढ-धूव-सुह-गंधं ।
अहि - डसण - डट्ठ - सरणं दसण - कवाडंसु - दट्ठ - तमं ॥४५॥

डाहत्त - दाह - हरणं कय - डोहलयाण पुन्न - दोहलयं ।
कडण - मइ - चत्त - कदणं डब्भंकुर - नील - नीलमणिं ॥४६॥

दब्भग्ग - मई दर - डोलिर सीसमदोलिरेण हिअएण ।
दूरमहरं डसंते डहमाणो मिच्छदिट्ठिजणे ॥४७॥

थुणिरो देवं बारह - रवि - तेअं - भत्ति - गग्गर - गिराए ।
धम्म - करि - करलि - हुओ कयलि - मिऊ कोह-अपलित्तो ॥४८॥

दोहल - दुउणिअ - धाराकयंब - धूलोकलंब - कंटइओ ।
घिप्पिर - सुवण्ण - दिप्पिर - तणु - कंति - कवट्टिअन्न - पहो ॥४९॥

चइउं निव - कउहाइं निसढाइ - निवाण धम्म-सिक्खाओ ।
ओसहमोसढिओ इव दिंतो स निसीहअं काउं ॥५०॥

निअ - नामंकिअ-णिअ-कित्तणयं अनिलाव्व अतुल-थामेण।
पज्जलिआनल - तेओ भत्तीइ तओ पइट्ठो सो ॥५१॥

लिंबासय-निंबगिरा कलि-ण्हाविअ-पाव-नाविआदरिसा।
धम्म-रिउणो वि तस्सि दिट्ठे धम्मोम्मुहा हूया ॥५२॥

सो फणस-फालिहद्दय-दीहर-भुअ-फलिह-जोडिअ-णडालो।
अफरुस - गिराइ फालिअ - मोहाइअ जिण - थुइमकासि ॥५३॥

फलिहा-जलं वहुत्तंबुजेहि जह-जह वणं च नीमेहि।
जग - सिरि - नीवावेडय सहइ मही तह तुह पएहि ॥५४॥

तुह कय - कुसुमामेला पणट्ठ - पारद्धि - पमुह - पाव - मला।
मुत्ताहल - विमला इह हवंति रेभव्व मुद्धन्ना ॥५५॥

सहलो जम्मो सभलं च जीविअं ताण देव फणि-चिंध।
जे तं चंपय - सवलेहिँ भिसिण-कुसुमेहिँ अच्चंति ॥५६॥

असिर-कमंधे अकयंध-सिरे समरम्मि तुज्झ झाणेण।
केढव-रिउणो व्व निवा विसढाविसमं न जाणंति ॥५७॥

वम्मह-पिआहिवन्नू अहिमन्नु-पिआ य अहरिओ तेण।
तुह भसल - साम पय - पंकएसु भमराइअं जेण ॥५८॥

पहु तुम्हकेर - अहखाय-संजमे सोवओग - साहूण।
न समो अह जाओ तव - किसंग - लट्ठी वि हु कुदिट्ठी ॥५९॥

करणिज्जाकरणीअं पेआपिज्जं च जे न वि मुणंति।
ते दोस-दुइज्जा वि हु गुण-वीआ हुंति तइँ दिट्ठे ॥६०॥

वेकक्ख - उत्तरीआ घवल - दुगूलोत्तरिज्ज - पिहिअ - मुहा ।
तुह कय-ण्हवणा घणछाय-छत्त-छाहीओ माणंति ॥६१॥

इय सच्छाओ कइवाह-परिअणो कइअवं थुइं काउं ।
आइ - किडि व्व अभेडो जिण-ण्हवणे अह पयट्टो सो ॥६२॥

पल्लाणिअ - अपडायाणिअ - हयमाएहि अवर - राएहि ।
कणवीरच्चिय - कलसो हलिद्द-गोरो स किर दिट्ठो ॥६३॥

तेण जिणम्मि दुवालस-रवि - तेए मुहल - घंट - थोर - रवं ।
णंगलि लंगलि भायर - सरिसेण पलोट्टिअ्रा कलसा ॥६४॥

णंगूलि-णाहलत्तण अपुण-भवत्थं निवेण करुणाए ।
लंगूलि - लाहला वि हु सित्ता जिन - ण्हवण - सलिलेण ॥६५॥

ससि-खंड-णडालाहिँ समरी-भासाइ दूसिमिण-हरणं ।
सिविणे वि दुलहमणुजिणमकारि संगीयमित्थीहिँ ॥६६॥

सढिआ सुनीविआहिँ नीमीओ नच्चणीहिँ तक्कालं ।
सविसेस - सद्द - गीए सज्जाइ - कमोक्कम - पयट्टे ॥६७॥

तइया वणिअ सुसाहिं निव - सुण्हा - वल्लहाओ ता दिट्ठा ।
पाहाण - पुत्तिआहि व पासाण - त्थंभ - लग्गाहिं ॥६८॥

वंजिअ-दस-विह-धाऊ जणणी लासस्स दह-विहस्सा वि ।
दिवसे दिवहावगमे अ सुहयरी वाइआ वीणा ॥६९॥

रंजिअ - नर - सिंघेणं वंसिअ - सीहेण वाइओ वंसो ।
दाघत्त - दाह - हरणो छुह - घवले जिण - गुणे गाउं ॥७०॥

छमि - छत्तिवण्ण - गोरी छट्ठी भल्लि व्व पंच - बाणस्स ।
मय - छावच्छी वर - मुहर - गायणी गिण्हिउं तालं ॥७१॥

अमय-छिरा-महुर-सराअमय-सिरोवम-सराहि अणुगमिआ ।
जिन-गाणम्मि-पयट्टा गुण - भायण - दाण - भाणंतो ॥७२॥

दणु-कुल-दणुअ-कुलाराइ-दुल्लहं तोइ राउल-विहारे ।
राय - उल - पियमवीअं गीअं सोउं न को आओ ॥७३॥

सक्कय - वारण - पाइअ - वायरण - पउत्त - सद्द-कय-गीए ।
आउज्जिअ - पायारे रंगे पुण आसि गुणि - पारो ॥७४॥

तत्थागओ अ कालायस-सम-कालास-अहिअ-हिओ जो ।
सो केलि-किसलयासोअ किसल - कोमल - हिओ आसि ॥७५॥

दुग्गावी - पा - वोढं दुग्गा - एवीस - पाय - वीढं च ।
मोत्तुं गण - गंधव्वा तं गीअं सोउमोच्छरिया ॥७६॥

जिण-पाय-वडण-गुरु-पा-वडणाइं चइअ तत्थ उब्भ-जणो ।
पुलयं कुरेहि कलिओ उउम्बरो उम्बरेहिं व ॥७७॥

जाव निवो कय - पूओ आरत्तिय - मंगलं न जा कुणइ ।
ता देव - उले मरुवय - पूअं अणुसोइउं लग्गो ॥७८॥

मइ ताव देउलमिमं निम्मविअं सहल-जीविअमणेण ।
सव्व - रिउ - कुसुम - पूआ नो जइ जीअं न मे सहलं ॥७९॥

अह भणिअं खे सासण - देवीए एवमेव मा जूर ।
आवत्तमाण - जस तुममेमेअ किमत्तमाण - मणो ॥८०॥

गुणि - पावारय - पारय दुह - अड - चिंतावडेसु मा पडसु ।
होही तुह उज्जाणं सइ सव्व - रिऊहि कय - कुसुमं ॥८१॥

आरत्तियमह काउं मुक्क - मलो अपरिमुत्त - माउक्को ।
तव - सत्तं गुणं - सक्कं भाउत्त - निहिं गुरुं पणओ ॥८२॥

विच्छुअ - डक्कोरग - दट्ठ - जीव - जीवाउ-चरण-रेणू-कणं ।
लुक्क-कलिं लुग्ग-भवं तं समुपासिअ गओ राया ॥८३॥

लक्खण - पुण्ण - मखीणं अछीण - गमणं अझीण - तणु तेअं ।
खंघाइ - सत्त - पिहुलं पोक्खर - गंधं धुवावत्तं ॥८४॥

खंद पिउ - कंद - सरोसावणीस-जुग्गं असुक्क - रोम - छविं ।
अणसुक्ख - मउलि - कुसुमं खेडय - जर - खेड अंग - रजं ॥८५॥

थाणु - पिया - जल-पुण्णं अखाणु - वायं जणेहि दीसंतं ।
पडिखंभि अट्ट - थंभय - थंभिअ - तणु - ठंभिअच्छेहिं ॥८६॥

रग्गं पिग-रत्त-सरं रवि-हय-सुक्कं व नील-किच्चि-छविं ।
सुंग - करणग्ग - चच्चर - चइत्त - ठिअ - दिट्ठि - दुच्चज्जं ॥८७॥

पच्चूहा पच्चूसं पि पंच-धारासु अकय-णिव्वेअं ।
णच्चा बुज्झा पिच्छीइ वण्णिअं सिक्ख - विज्जं ति ॥८८॥

विच्छुअ-अहिविच्छिय-अच्छीविस-विस-हरण-छेत्त-सेअ - जलं ।
खुर - ताडण - अखम - छमं रिक्ख - पवंगेस - सम - वेगं ॥८९॥

अवि रिच्छ - सरिच्छेहिँ सणिच्छयं सच्छणं च लोएहि ।
अच्छी - पच्छं लिच्छूहिँ पेच्छिअं आसमारूढो ॥९०॥

धवलगेहमइ - निच्चलाकिदी वच्छलो चुलुग - वंस - दीवओ ।
तच्च - देवय - वरेण तक्खणोसारिआखिल-दुहो पहुत्तओ ॥९१॥

कुमारपालचरित

(शब्दार्थ एवं हिन्दी-अनुवाद)

प्रथम सर्ग

१. अह=इसके बाद। पाइआहिँ भासाहिँ=प्राकृत आदि भाषाओं द्वारा। संसयं=संशय को। बहुलं=विविध। आरिसं=आर्ष, अर्थात् अतिप्रसिद्ध जीव एवं कर्म से सम्बन्ध रखनेवाले विषय को। तं तं=उन उन। अवहरमाणं=निराकरण करनेवाले। सिरिवद्धमाणसामिं=श्रीवर्द्धमान स्वामी को। नमंसामो=नमस्कार करें।

इसके (संस्कृत-द्व्याश्रयकाव्य के) प्रणयन के पश्चात् प्राकृत आदि भाषाओं द्वारा जीव एव जगत्-सम्बन्धी विविध संशयों का निराकरण करनेवाले श्रीवर्द्धमानस्वामी को हम नमस्कार करें ।।१।।

२. अत्थि=है, था। अणहिल्लनगरं=अणहिलनगर। अंतावेई-समाइ-निवनिचिअं=गंगा एवं यमुना के मध्यवर्त्ती देशों के स्वामी-राजाओं से व्याप्त। सत्तावीसई=सत्ताईस। मुत्तिअ=मोती। भूसिअ=विभूषित, अलंकृत। जुवइजण=युवतियाँ। पइहरयं=पतिगृह।

गंगा एवं यमुना के मध्यवर्त्ती देशों के स्वामी-राजाओं से व्याप्त अणहिल नाम का एक नगर है, जहाँ सत्ताईस प्रकार के नक्षत्रों के समान (सुन्दर) मोतियों (के हारों) को धारण करनेवाली युवतियों से युक्त पंतिगृह सुशोभित होते हैं ।।२।।

३. तिअसवईहर-वहुमुह = देवेन्द्र के गृह में निवास करनेवाली वधुओं के मुख के लिए अथवा देव-वधुओं के लिए। आदरिसीहूय = दर्पण के समान। फलिहसिलसिहरो = स्फटिकमणि-जटित शिलाओंवाले शिखर। जस्सि = जहाँ, जिसमें। पुहइ-वहूमुह = पृथिवी-रूपी वधू का मुख। अवयंसो = शोभाजनक। सहइ = सुशोभित है। पायारो = प्राकार।

जहाँ स्फटिक मणि-जटित शैल-शिखर देव-वधुओं के लिए दर्पण के समान है एवं जहाँ का प्राकार पृथिवी-रूपी वधू के मुख की सुषमा से सुशोभित है ॥३॥

४. निवसह = राजसभा। मुहावयंसा = मुखशोभा, शिरोभूषण। विइया = द्वितीय। गुरुणो = गुरु का। अवीय = अनुपम, अद्वितीय। गुणनिवहा = गुणसमूह। निवसंति = निवास करते हैं। अणेगबुहा = अनेक विद्वान्। जस्सि = जहाँ। पुहवीस = पृथिवीपति। सलहिज्जे = प्रशंसनीय।

राजसभा-रूपी मुख के अलंकारस्वरूप, द्वितीय गुरु के समान, अनुपम गुण-समूहों से युक्त तथा राजाओं द्वारा प्रशंसनीय अनेक विद्वान् जिस नगर में निवास करते हैं ॥४॥

५. न हु अत्थि = निश्चय ही न था। न वि अ हूअं = और न होगा। इहलोए = इस लोक में। अइसएण = अतिशय गुणसम्पन्न। जस्स समं = जिसके समान। सुउरिस - ठाणं = सत्पुरुषों का निवासस्थान। असूरिस-रहिअं = अधम दुर्जनों से रहित। सालाहणपुरं पि = प्रतिष्ठान नामक नगर भी।

सत्पुरुषों के निवासभूत एवं अधम तथा दुर्जनों से रहित प्रतिष्ठान नामक नगर सुप्रसिद्ध माना जाता रहा है, फिर भी अपने अतिशय गुणों

के कारण इस संसार में अणहिलपुर के समान न कोई नगर हुआ है और न होगा ॥५॥

६. जस्सि=जहाँ, जिस नगर में। नमंतसीसो=माथा झुकाते हुए। तियसीसो वि=देवेन्द्र भी। हु=निश्चय। तवं तवंताणं=बाह्याभ्यन्तर तपस्या करनेवाले। तेलुक्कसज्जणाणं=तीनों लोकों में सज्जन। थुणइ=स्तुति करता है। सभिक्खूण=भिक्षुओं का। सद्धाए=श्रद्धापूर्वक।

जिस नगर में बाह्याभ्यन्तर तपस्याएँ करते हुए तीनों लोकों के सज्जन भिक्षुओं की देवेन्द्र भी बहुत श्रद्धापूर्वक अपना माथा झुकाकर स्तुति करते हैं ॥६॥

७. जत्थ=जहाँ, जिस नगर में। उन्नय=उन्नत, विशाल। थण=स्तन। नीसह=असहनीय, अधीरतापूर्वक। वहु=वधू। दंसण=दर्शन। निस्सहं=अधीरतापूर्वक। नरा=व्यक्ति, सहृदय युवकजन। जंति=घूमते हैं। दुसहाउ=असह्य, असह्य शीत-ताप आदि के कारण। दुस्सहेणं=सहन कर सकने में कठिन। मयणेण=कामदेव से। हयंतरप्पाणो=तिरस्कृत है अन्तरात्मा जिनकी (ऐसे रसिक युवक)।

जिस नगर में असह्य शीत-ताप आदि के कारण सहन करने में अत्यन्त कठिन कामाग्नि से विद्ध प्राणवाले रसिक युवकजन, उन्नत स्तनों के भार की कठिनाई के कारण मन्द गतिवाली नगरवधुओं को देखकर बड़ी अधीरता से आगे बढ़ पाते हैं ॥७॥

८. तेअ=तेज। दुरालोएहिं=देखने में अत्यन्त कठिन। अंतोउवरिं=भीतरी एवं ऊपरी भागों में। घराण=घरों के। रयणेहिं=रत्नों द्वारा। छूढ व्व=बिखरे हुए के समान। निरवसेसा=

समस्त। सरिआहिव-सम्पया=सागर के वैभव से। जत्थ= जहाँ।

जिस नगर में, भवनों के भीतरी एवं बाहरी प्रदेशों में अपनी प्रखर किरणों द्वारा आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाले रत्न जड़े हुए हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों सागर ने अपने समस्त वैभव को ही वहाँ बिखेर दिया है ।।८।।

९. विज्जु-चल=विद्युत्-रेखा के समान चपल। महुरगिरो= मधुरवाणी से। दितो=देते हैं। लच्छि=लक्ष्मी को, सम्पत्ति को। जणो=व्यक्ति। छुहत्ताण=भूखे व्यक्तियों को। भिसओ= वैद्य। खु=निश्चय से। जहा=जिस प्रकार। सरओ= शरत्काल। दिसाण=दिशाओं को। पाउस किलंताण=वर्षा ऋतु के कारण मलिन।

जिस नगर के निवासी जन विद्युत्-रेखा के समान चंचल अपनी लक्ष्मी को मधुर वाणी बोलकर भूख से पीडित जनों को दान-स्वरूप भेंट किया करते हैं तथा वैद्यजन रोग से पीडित जनों को उसी प्रकार नीरोग बना देते हैं, जिस प्रकार वर्षा ऋतु द्वारा कलुषित दिशाओं को शरत्काल स्वच्छ बना देता है। (कवि ने वहाँ के लोगों की दानशीलता एवं कर्त्तव्यपरायणता का पूर्णोपमालंकार द्वारा निरूपण किया है) ।।९।।

१०. जत्थ=जहाँ। अच्छरसमणहरो=अप्सरा के मन का हरण करनेवाली। वहूहि=वधुओं के साथ। रमिरो=रमणशील। वि=भी। अच्छरसमाहिं=अप्सराओं के सदृश। दीहाउ= दीर्घायुष्य (होने पर भी)। अदीहाउस=अदीर्घायुष्य, अल्पायुवाला। माणी=मानते हुए। सइ=सदा। विवेइजणो= विवेकीजन।

अप्सराओं के मन का भी हरण करनेवाली अप्सराओं (देवियों) के समान युवती रमणियों के साथ रमण करते हुए और इसलिए दीर्घायु (अधिक

उम्रवाले) होते हुए भी जहाँ के निवासी विवेकीजन अपने को निरन्तर अल्पायु (कम उम्रवाला) ही समझते हैं ॥१०॥

११. कुसुमधणू = पुष्पनिर्मित धनुष। धणुह-धरो = धनुर्धारी। कउहामुह-मंडणम्मि = दिशाओं-रूपी मुख का मण्डन। चंदम्मि = चन्द्रमा। रज्जं = राज्य को। तमेगछत्तं = उस एकच्छत्र को। असंकं = निर्भय होकर। उवभुंजए = उपभोग करते हैं, पालन करते हैं।

जहाँ दिशारूपी वधुओं के अलंकृत मुखचन्द्र पर कामदेव पुष्पों द्वारा निर्मित अपने धनुष-बाण से एकच्छत्र राज्य करता हुआ उनका निर्भीक होकर उपभोग करता है ॥११॥

१२. रोमंच-कंटइल्लो = रोमांचित-कण्टकित। संझाए = सन्ध्या-काल में। वंकजंपण-छइल्लो = वक्रोक्तिपूर्ण भाषण करनेवाले चतुर व्यक्ति। जत्थ = जहाँ। मणंसिलतिलओ = मैनसिल धातु के लाल तिलक से युक्त। विलसइ = सुशोभित होता है। अहिसारिआलोओ = अभिसार करनेवाली।

जहाँ रोमांच से कण्टकित होकर वक्रोक्तिपूर्ण भाषण करनेवाले चतुर व्यक्ति सन्ध्याकाल के समय रक्तवर्ण की श्रेष्ठ उपधातु के तिलक से अलंकृत अभिसारिकाओं के साथ सुशोभित रहते हैं ॥१२॥

१३. जत्थ = जहाँ। भवणाण = भवनों के। अवरिं = ऊपर। देवं = देव। नागेहिं = नागों द्वारा। विम्हया = विस्मित (चित्त)। दिठ्ठो = देखा जाता है। रमइ = रमण करता है। मणोसिल-गोरा = मैनसिल की तरह स्वर्णिम वर्णवाले या गौरवर्ण के। मणसिल-लित्तो = मैनसिल के लेप से युक्त। मियच्छि-जणो = मृगाक्षी युवतियाँ।

जिस अणहिलनगर में भवनों के ऊपर मैंनसिल के समान श्वेतरक्त वर्णवाले रमणशील प्रेमीजन मैंनसिल के लेपों से अलंकृत अपनी मृग-नयनी प्रेमिकाओं के साथ देव एवं नागकुमारों द्वारा विस्मित नेत्रों से देखे जाते हैं ।।१३।।

१४. पव्वेसु=पर्व के दिनों में। अपव्वेसुं=सामान्य दिनों में। जत्थ=जहाँ। मुणोण=मुनियों का। कमेण=क्रम से। अकमेणं=सामान्य रूप से। काऊणं=करके। पडिवत्ति=भक्ति, सेवा। हरिसं=हर्षपूर्वक। काऊण=करके। देइ=देता है। जणो=जन।

जहाँ के नागरिक पर्व के दिनों अथवा सामान्य दिनों में क्रम से अथवा सामान्य रीति से मुनियों की भक्ति करते हुए हर्षोल्लासपूर्वक उन्हें आहार आदि दान करते हैं ।।१४।।

१५. वीसगुणो=बीसगुना। तीसगुणो=तीसगुना। कलिकालो=कलियुग। नूण=निश्चय। जत्थ=जहाँ। कयजुगओ=कृतयुग। नूणं=निश्चय। अणभुंजंते=न खाते हुए। लोए=लोक में। मांसं=मांस। समंसं=अपने मांस के समान। व=अथवा।

घोर अन्धकारपूर्ण कलिकाल के विद्यमान रहने पर भी जहाँ के निवासी बीस-तीसगुना सद्गुणों से युक्त हैं। वहाँ के लोग दूसरे के मांस को निश्चय ही अपना जैसा मांस समझकर उसका सेवन नहीं करते ।।१५।।

१६. जंस्सि=जहाँ, जिस नगरी में। भवणंसु-भंगीओ=भवनों की उज्ज्वल किरणें। संखधरसंखभंगोज्जलाओ=शंख, प्रवाल, मोती आदि रत्नों की ज्योतिर्मयी किरणों के प्रभाव से। सकलंकं=कलंकसहित। वि=भी। हु=निश्चय। रयणीरमण=चन्द्रमा। अकलंकं=निष्कलंक। कुणंति=करते हैं।

जिस अणहिलपुर के भवनों में जड़े हुए शंख, प्रवाल, मोती एवं माणिक्य आदि रत्नों की ज्योतिर्मयी किरणें कलंकयुक्त चन्द्रमा को भी निष्कलंक बना देती हैं ॥१६॥

१७. जस्सि=जहाँ, जिस नगरी में। अलंघं=अलंघनीय, पूज्य पुरुषों की अवज्ञा न करना। न=नहीं। लंघिज्जइ=आज्ञा न टालना। हु=निश्चय। च=और। अवंचणिज्जं=न ठगने योग्य पुरुष को। न=नहीं। वंचिज्जइ=ठगता था। च=और। केणावि=किसी भी। अवंछणिज्जं=अवांछनीय को। न=नहीं। वंछिज्जइ=चाहता था।

जिस नगर में लोग अपने गुरु, माता-पिता, वृद्ध एवं पूज्य पुरुषों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते, न ठगने योग्य मित्र आदि को कभी माया, छल, कपट आदि से नहीं ठगते और जहाँ कोई भी व्यक्ति अवांछनीय दूसरों की सम्पत्ति आदि अथवा परस्त्री आदि को प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं रखते ॥१७॥

१८. वंजिअसत्ती=(प्रचण्ड शत्रुओं को त्रास देने में) प्रकटित शक्तिवाले। सत्ती अणंजिओ=अत्यन्त तेजस्वी पराक्रमवाले। सत्ति-वंझजणवंझो=शत्रुजनों की शक्ति को निर्मूल (निर्वीर्य) कर देनेवाले। लुंटाय=चोरों के लिए। लुंटणो=चोर। संठे=मायावियों में। संठो=मायावी। जत्थ=जहाँ के। निवलोओ=राजा लोग।

जहाँ के राजा प्रचण्ड शत्रुओं को त्रास देने में समर्थ, तेजस्वी पराक्रमवाले, शत्रुओं की शक्ति को निर्मूल (निर्वीर्य) कर देनेवाले तथा चोरों के लिए चोर तथा मायावियों के लिए मायावी हैं ॥१८॥

१९. उद्दंडबाहुदंडा=शत्रुओं को त्रास देने में उद्दण्ड बाहुदंडवाले। जस्सि=जहाँ, जिस नगर में। कुंढासहा=आलस्य

एवं शिथिलता को सहन न कर सकनेवाले। सयमकुंढा= देवपूजा आदि में प्रमादरहित। कंतंगा=सुन्दर एवं सुडौल अंग-प्रत्यंगवाले। कंतगुणा=शौर्य, औदार्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणों से युक्त। नयपथे=न्यायमार्ग में। पंथिआ= चलनेवाले। पुरिसा=पुरुष,नागरिक।

जिस नगर में प्रचण्ड शत्रुओं को त्रास देने में उद्दण्ड बाहुदण्डवाले, आलस्य अथवा शिथिलता को सहन न कर सकनेवाले, देवपूजा आदि में प्रमादरहित, सुन्दर एवं सुडौल अंग-प्रत्यंगवाले; शूरता, वीरता, उदारता, गम्भीरता आदि गुणों से समृद्ध तथा न्यायमार्ग में चलनेवाले पुरुष निवास करते हैं ॥१९॥

२०. चंदुज्जाण व चंदो=कमलपुष्पों के लिए चंद्रमा के समान। वंफिअबंधूण=अभिलषित बन्धुओं को। बंधवो=बान्धव। जस्सि=जहाँ जिस, नगर में। अणुकंप-कंपिअमणो=दयालु चित्तवाले। विहविजणो=सम्पत्तिशाली। वंफए=चाहता है। धम्मं=धर्म को।

कमलपुष्पों के लिए चन्द्रमा के समान ही अभिलषित बन्धुओं के लिए बन्धु के समान जहाँ के दयालु चित्तवाले सम्पत्तिशाली व्यक्ति धर्माचरण में ही तत्पर रहने की इच्छा रखते हैं ॥२०॥

२१. लंवंत-लुंबि=लटकते हुए फलसमूह। रंभारंभि=केले के वृक्षों से प्रारम्भ। तोरणनिरुद्धसंरंभो=तोरणों द्वारा निरुद्ध किरणसमूह। सरएवि पाउसम्मि=शरत्काल में भी वर्षा ऋतु के समान। व=अथवा। न=नहीं। जत्थ=जहाँ। दीसइ= दिखाई पड़ता है। फुडो=स्पष्ट। तरणी=सूर्य-किरणें।

लटकते हुए फलसमूहों से युक्त केले के वृक्षों से प्रारम्भ होनेवाले तोरणों द्वारा निरुद्ध सूर्य-किरणें शरत्काल में भी वर्षा ऋतु के समान

जहाँ स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं। अर्थात्, सघन केले के वृक्षों एवं तोरणों की छाया के कारण उस नगरी में सूर्य-किरणें दिखाई नहीं पड़तीं ॥२१॥

२२. जत्थ = जहाँ। चुलुक्क-निवाणं = चालुक्यवंशी राजाओं की। परिमलजम्मो = सुरभि का जन्मस्थान। जसो = यशरूपी। कुसुमदामं = पुष्पमाला की। नहमिव = आकाश के समान। सव्वगओ = सर्वव्यापी। दिस-रमणीण = दिशा-रूपी रमणी के। सिराइँ = सिर को। सुरहेइ = सुरभित करता है।

जहाँ चालुक्यवंशी राजाओं की यश-रूपी पुष्पमाला से उत्पन्न सुरभि आकाश के समान सर्वव्यापी होकर दिशा-रूपी रमणियों के मस्तक सुरभित किया करती है ॥२२॥

२३. सव्ववयाणं = सभी अवस्थाओं में श्रेष्ठ। मज्झिमवयं = मध्यम वय, अर्थात् युवावस्था। व = अथवा। सुमणाण = फूलों में (सर्वश्रेष्ठ)। जाइसुमणं = जातिपुष्प। सम्माण = सुखों में (सर्वश्रेष्ठ)। मुत्तिसम्मं = मुक्तिसुख। पुहइ-नयराण = पृथिवी के समस्त नगरों में। जं = जो। सेयं = सर्वश्रेष्ठ।

जिस प्रकार मनुष्य की सभी अवस्थाओं में युवावस्था सर्वश्रेष्ठ है; सभी पुष्पों में जातिपुष्प एवं सुखों में मुक्ति-रूपी सुख सर्वश्रेष्ठ माना गया है, ठीक उसी प्रकार पृथिवी के समस्त नगरों में अणहिलपुर को भी सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥२३॥

२४. चम्मं = चर्म, चमड़े की। जाण = जिनकी। न = नहीं। अच्छी = आँखें, नेत्र। णाणं = ज्ञान। अच्छीइं = नेत्रों का। ताण वि = उनका भी। मुणीण = मुनियों का। विअसंति = विकसित होते हैं। जत्थ = जहाँ। नयणा = नेत्र। किं = क्या। पुण = पुनः। अन्नाण = दूसरों के। नयणाइं = नेत्रों का।

जो चर्मचक्षु नहीं, अपितु ज्ञानचक्षु से सम्पन्न थे, ऐसे मुनियों अथवा साधकों के भी ज्ञाननेत्रों का जिस नगर में निरन्तर विकास होता रहता है, फिर दूसरे सामान्य नेत्रवालों की तो बात ही क्या ? ।।२४।।

२५. गुरुणो = बृहस्पति के । वयणा = वचन । वयणाइं = वचनों के । ताव = तथा । माहप्पं = गौरव को । अवि = भी । य = और । माहप्पो = गुण । ताव = तब । गुणाइं = गुण आदि । पि = भी । गुणा = गुण । जाव = जब । न = नहीं । जंसि = जहाँ । बुहे = बुद्धिमान्, विद्वान् । निअइ (दृश्यते) = देखा जाता है ।

जहाँ के विद्वानों की वाक्पटुता, गौरवशालिता आदि गुणों को देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि देवताओं के गुरु बृहस्पति की भी विद्वत्ता, गौरवशालिता एवं गुणज्ञता नगण्य है ।।२५।।

२६. हरि-हर विहिणो देवा = ब्रह्मा, विष्णु आदि विविध प्रकार के देव । जत्थन्नाइं वि = जहाँ अन्य और भी । वसंति = निवास करते हैं । देवाइं = देव आदि । एयाए = इस । महिमाए = महिमापूर्ण । हरिओ = तिरस्कृत । महिमा = वैभव, प्रभाव । सुरपुरीए = स्वर्गलोक की ।

जिस नगर में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के साथ अन्य कई और भी देवता निवास करते हैं तथा जिस अणहिलपुर ने अपनी महिमा से स्वर्ग के वैभव को भी तिरस्कृत कर दिया है ।।२६।।

२७. जत्थ = जहाँ । अंजलिणा = हाथों से । कणय = स्वर्ण । रयणाइं रत्न आदि । वि = भी । अंजलीइ = अंजलि से । देइ = दिया जाता है । जणो = जन, व्यक्ति, कणयनिही = स्वर्णनिधि । अक्खीणो = अक्षय । रयणनिही = रत्ननिधि । अक्खया = अक्षीण । तह वि = तथापि ।

जिस नगर के लोग स्वर्ण को हाथों से एवं बहुमूल्य रत्न आदि अंजलियों द्वारा याचकों को दानस्वरूप दिया करते हैं, फिर भी वहाँ की स्वर्णनिधि भी अक्षय है और रत्ननिधि कभी क्षय को प्राप्त नहीं होती ॥२७॥

२८. तत्थ=उस नगरी में। सिरिकुमरवालो=श्रीकुमारपाल। दाहाए=बाहुओं में। सव्वओ=चारों दिशाओं के। वि=भी। धरिअधरो=पृथिवी को धारण किये हुए। सुपरिट्ठ-परीवारो=न्यायमार्ग में लगे हुए मित्र, मन्त्री आदि से युक्त। सुपइट्ठो=दृढप्रतिज्ञ। आसि=है, था। राइंदो=राजेन्द्र।

उसी अणहिलपुर में चारों दिशाओं के राजाओं को अपने भुजदण्डों से पराजित करनेवाला, न्यायमार्ग में लगे हुए मित्रों एवं मन्त्रियों से युक्त, दृढप्रतिज्ञ एवं शोभा-सम्पन्न कुमारपाल नाम का राजेन्द्र (राजा) राज्य करता था ॥२८॥

२९. तुह=तुम्हारी। आणा-ओमालं=आज्ञा ही निर्माल्य है, अथवा तुम्हारा शासन ही शेष है। सिरम्मि=सिर पर। धरिमो=धारण करते हैं। जहा=जिस प्रकार। अणिम्मल्लं=अनिर्माल्य, तत्काल ही विकसित होनेवाले पुष्प आदि। अम्हे=हमलोग। एत्थाम्हेत्थ=यहाँ हमलोग। य=और। इअ=इस प्रकार। भणिउं=कहकर। जो निवेहि=जो राजाओं से। नओ=नत-मस्तक (रहते हैं)।

"तुम्हारा शासन ही शेष है, जिसे हमलोग अपने मस्तक पर धारण करते हैं तथा हमारे सिन्धुदेश, कोंकणदेश आदि अब अपने ही समझिए" इस प्रकार कहकर राजा लोग जिसे अपना मस्तक झुकाया करते हैं ॥२९॥

३०. तुह=तुम्हारी। हरि-पिआ=लक्ष्मी, पृथिवी। जइ=यदि। इमा=यह। किं=क्यों। पि=भी। पिआ=प्रिया। किमवि=कुछ भी। मेइणी=पृथिवी। जइमा=यदि यह। ता=तब। किं=क्या। ति=इस प्रकार। मए त्ति=मेरा है, इस प्रकार। रुसेव=मानों क्रुद्ध होकर। जस्स=जिसकी। कित्ती=कीर्त्ति। गया=चली गई। दूरं=दूर।

"लक्ष्मी तुम्हारी प्रियतमा कैसे हुई? यह पृथिवी तुम्हारी प्रियतमा कैसे बन गई?" यह कहती हुई ही मानों उस राजा कुमारपाल की कीर्त्ति-रूपी वधू क्रुद्ध होकर दूर भाग गई, अर्थात् उसकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल गई ॥३०॥

३१. जो=जो। दूसासण-रिउणो=दुःशासन के शत्रु भीम का। आसत्थामस्स=अश्वत्थामा का, द्रोणाचार्य के पुत्र का। राम-सीसस्स=परशुराम के शिष्य भीष्म का। वीसामिअ=विश्रान्त। जसपसरो=यश का प्रसार। सजसेणं=अपने यश से। कासवि-तलम्मि=पृथिवी-मण्डल पर।

जो (कुमारपाल) भीम, अश्वत्थामा, भीष्म आदि के समान पराक्रमी था और जिसने पृथिवी-मण्डल पर अपने यश के प्रसार से उक्त योद्धाओं के यश के विस्तार को रोक दिया था ॥३१॥

३२. वीसुं (विष्वक्, समन्ताद्)=चारों तरफ। वासानीसित्त=वर्षाकाल में खूब वर्षा। महिअले=पृथिवीतल पर। ऊस-मालितेअस्स=सूर्य की प्रखर किरणों से। रन्ने=राज्य में। जस्स=जिसके। न कास वि=किसी को भी नहीं। नीसत्तं=दरिद्रता। नीसहत्तं=असमर्थता। वा=अथवा।

सूर्य की प्रखर किरणों के कारण जिस कुमारपाल के राज्य में वर्षा ऋतु के समय चारों तरफ खूब वर्षा होती है और जहाँ कोई भी व्यक्ति दरिद्र एवं असमर्थ नहीं है ॥३२॥

३३. गुणसामिद्धी=शौर्य, वीर्य आदि गुणों से समृद्ध। पयडा= प्रकट, स्पष्ट। कलासमिद्धी=विविध कलाओं से सुशोभित। वि=भी। पायडा जस्स=प्रकट है जिसकी। जो=जो। दाहिण-पवणनिहो=दक्षिण की वायु के समान। दक्खिण्णनिही=उदारता का खजाना। गुणिजणाण=गुणीजन-समूह।

जो राजा कुमारपाल शौर्य, वीर्य आदि गुणों से समृद्ध एवं विविध कलाओं से सुशोभित है तथा गुणीजनों के लिए दक्षिणी वायु (मलयानिल) के समान ही (सर्वसुलभ) उदारता के खजाने के समान है ।।३४।।

३४. सिविणम्मि=स्वप्न में। वारणबलं=गजसेना। सुमिणम्मि= स्वप्न में। अ=और। आस-साहणं=अश्व-साधन, अश्वसेना। जस्स=जिसकी। दिण्णभयं=त्रस्त कर देनेवाले। पिच्छंता= देखते हुए। दत्तकरा=दण्ड-कर देनेवाले। रिउ-निवा= शत्रु-राजा। जाया=हो जाते हैं।

राजा कुमारपाल की गजसेना एवं अश्वसेना को यदि उसके शत्रु-राजा स्वप्न में भी जब कभी देख लेते थे, तो वे आतंक से भर जाते थे और उसे दण्ड-कर आदि देकर प्रसन्न करने का प्रयास किया करते थे ।।३४।।

३५. अंगार-पिक्कगोल्ले=अंगारों पर पकाये हुए बिम्बीफल आदि। खाए=खाते हैं। इंगलपक्ककंदे अ=अंगारों पर पकाये गये कन्द-मूल आदि। तत्तनिलाडा=तपा हुआ ललाट, लिलार। रिउणो=शत्रुओं का। जस्स=जिसका। णलाडंतवे=ललाट को तप्त करनेवाला, अर्थात् अतिशय प्रखर। तवणे=सूर्य की तरह (प्रचण्ड शासन में)।

ललाट को तपा देनेवाली सूर्य की प्रखर किरणों के समान तेजस्वी राजा कुमारपाल के शत्रु-राजा उससे आतंकित होकर जंगलों में अंगारों पर

पके हुए बिम्बीफल एवं कन्द-मूल आदि खाकर अपना गुजारा किया करते हैं ।।३५।।

३६. कइमं=कितने। मज्झिमलोए=मध्यलोक में। रिऊहिं=शत्रुओं ने। चत्तं=त्याग दिया। न=नहीं। छत्तिवण्ण-वणं=सप्तपर्ण का वन। नवछत्तवण्ण-परिमलमए=नव सप्तपर्ण-वनों की सुगन्धि से मत्त। गए=(मदोन्मत्त) हाथी। जस्स=जिसको। संभरिउं=स्मरण करके।

मर्त्यलोक में नवीन सप्तपर्ण की सुगन्धि के समान मदजल की सुगन्धि से मत्त हाथियों से समृद्ध जाने कितने सप्तपर्ण के जंगलों को कुमारपाल के शत्रुओं ने, उसके प्रताप का स्मरण कर, छोड़ा होगा ।।३६।।

३७. अमयमइओ व्व=अमृत के समान। अहवा=अथवा। अमय-मयाओ वि समहिओ=अमृत-विकार से भी अधिक। जस्स=जिसकी। हर-हरि-पिआहि=शंकर-पार्वती द्वारा। वि=भी। जसगीअझुणी=यशगीत-ध्वनि। सुव्वए=सुनते हैं। वीसुं=चारों तरफ।

अमृत के समान अथवा अमृत से भी अधिक महत्त्वशाली जिसकी यशोगाथा के सुन्दर गीत शंकर-पार्वती की यशोगाथा से भी अधिक सुने जाते हैं ।।३७।।

३८. अखुडिअ=अखण्डित। पडिहा=प्रतिभा के। पसरस्स=प्रसार के। अग्गओ=आगे। जस्स=जिसका। दप्पकंडूलं=दर्परूपी खाज। खंडिअनाणप्पडिहं=खण्डित ज्ञान-रूपी प्रतिभा। बुहं=बुध, विद्वान्। चुडं=प्रचण्ड। गउअ=गाय (की आकृति)। चंडं=भयंकर।

जिस कुमारपाल की अखण्डित प्रतिभा के प्रसार के आगे प्रचण्ड, तेजस्वी एवं चतर शत्रुओं की दर्प-रूपी खुजली शान्त होने के साथ ही उनकी ज्ञान-प्रतिभा भी कुण्ठित हो गई थी ।।३८।।

३९. असि=तलवार (चलाने में)। धणु=धनुष (चलाने में)। पुढमो=सर्वप्रथम। छुरिया=छुरी (चलाने में)। पढुमो अ=सर्वप्रथम। सेल्ल-पढमो य=सेला चलाने में भी प्रथम। सव्वण्णुव्व=सर्वज्ञ के समान। अहिण्णू=जानकार, अभिज्ञ। जो=जो। सयल-कला-कलावस्स=समस्त कलाओं के।

वह राजा कुमारपाल तलवार, धनुष, छुरी एवं सेला चलाने में सर्वप्रथम था। इसी प्रकार, वह सर्वज्ञ के समान समस्त कलाओं का भी जानकार था ॥३९॥

४०. उर-सेज्जा=हृदय-शय्या। हरिणो=विष्णु या कमल की। सिरि=लक्ष्मी। अथिरा=चंचला। वेल्लि=लता। तरुणो=वृक्ष का। भूवल्लि=पृथिवी-मण्डल। पेरंते=पर्यन्त, तक।

जो लक्ष्मी विष्णु के हृदय-स्थल की शय्या होने पर भी तथा अपने सुन्दर निवास—कमल में रहकर भी अस्थिर—चंचला थी, वह (चंचला लक्ष्मी) गुण-रूपी लता के लिए महान् वृक्ष के समान उस सम्राट् कुमारपाल (द्वारा शासित) पृथिवी-मण्डल पर स्थिर होकर रहने लगी ॥४०॥

४१ दिस-पज्जंते=दिशा-पर्यन्त। अहरिअ=धीमा (मलिन) कर देना। जोण्होक्करो=चन्द्रमा की चाँदनी। जसोक्केरो=धवल यश। अच्छेर=अच्छा, निर्दोष। अच्छरिअं=आश्चर्य।

जब उस सम्राट् कुमारपाल के यश-समूह ने समस्त दिशाओं में फैली हुई चाँदनी को भी फीका कर दिया, तब उसे (उसके उस यश-समूह को) देखकर अच्छे-अच्छे ज्ञानी-योगी भी आश्चर्य में क्यों न पड़ते? ॥४१॥

४२. बंभचेरग्गहण=ब्रह्मचर्य का ग्रहण। पइ=पति। विओअ=वियोग। रण्ण=अरण्य। रिउ=रिपु, शत्रु। पोम्मच्छि=कमलनयनी, पद्माक्षी।

सम्राट् कुमारपाल के भय के कारण अरण्यों में छिपे शत्रुओं की कमल-नयनी पत्नियों के लिए भी जो (पराक्रमी सम्राट् कुमारपाल) ब्रह्मचर्य की दीक्षा देने में गुरु का काम करता है ॥४२॥

४३. पय-पउम = चरण-कमल । परोप्परामद्दतुट्ट = परस्पर मर्दन से टूटे हुए । जस्स = जिसकी । सहाइ = सभा, राज्यसभा में । निर्वेहिं = राजाओं द्वारा । ओप्पिअ = अर्पित । मुत्तिआहरणं = मोतियों के आभरण ।

जिस कुमारपाल की राज्यसभा में उसके (कुमारपाल के) चरण-कमलों में नमस्कार करने के क्रम में परस्पर संघर्षण के कारण राजाओं के हार टूट जाते थे । अतः, ऐसा प्रतीत होता था, मानों वे उस राजा को मोतियों के बने आभूषण उपहारस्वरूप भेंट कर रहे हों ॥४३॥

४४. जत्थप्पिअ = जिसपर समर्पित । भू-भारो = पृथिवी का भार । सुवइ = सोता है । फणी = शेषनाग । हरी = विष्णु । उणा = पुनः ।

जिस सम्राट् कुमारपाल पर पृथिवी का भार सौंपकर शेषनाग तथा विष्णु भी (निश्चिन्त होकर) सोते रहते हैं, किन्तु अपनी भुजाओं पर पृथिवी का भार उठाये हुए वह (कुमारपाल) स्वयं कभी नहीं सोता । (अर्थात् कभी असावधान नहीं रहता) ॥४४॥

४५. जइ = यदि । सक्को = शक्र, इन्द्र । नरो = नर, अर्जुन । सारिच्छो = समान । भुवणाभय = भुवन के लिए अभयदान ।

उस कुमारपाल की समानता न तो इन्द्र ही कर सकता है और न अर्जुन या नारायण ही । क्योंकि, वह बार-बार धरती के समस्त प्राणियों को अभयदान देने के कारण सबके लिए अत्यन्त प्रिय है ॥४५॥

४६. रण्णे = रणभूमि में। अरण्ण = जंगल। साणाउलम्मि = शृगालों—कुत्तों से व्याप्त। लाऊ-लया = लौका की लता। जस्सारि-वहूहि = जिसके शत्रुओं की पत्नियों द्वारा। कुल्ला = क्यारी, नाली। रुन्नं = रुदन किया।

हरी-हरी अलाबु (लौका)-लताओं से व्याप्त तथा शृगालों से भरे हुए रणरूपी उस जंगल में सम्राट् कुमारपाल के शत्रुओं की पत्नियों ने बहुत अधिक रुदन किया। उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानों उनके अश्रु-प्रवाह से कुमारपाल ने उन अलाबु-लताओं के (सिंचन के) लिए वहाँ नालियाँ—क्यारियाँ ही बनवा दी हों ॥४६॥

४७. उक्खय = अलग करके। संठविय = संस्थापित कर। निवेण = राजा द्वारा। वच्छत्थलाओ = वक्षःस्थल से। निअम्मि = अपने। लच्छी = लक्ष्मी।

जिस राजा कुमारपाल ने अपने विरोधी राजाओं को (पहले तो) पराजित कर उन्हें अपने-अपने राज्यों से भगा दिया था, किन्तु बाद में उसके भक्त हो जाने पर उसने उन्हें पुनः उनके राज्यों में नियुक्त भी कर दिया था। यह देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानों विष्णु ने लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल से अलग कर उसे फिर अपनी ही भुजाओं में धारण कर लिया हो ॥४७॥

४८. अह = इसके बाद। कइया = कदाचित्। दिवा-मुह = प्रातःकाल। पत्थिवोचिअं = पार्थिवोचित, राजा के योग्य। अणुरागागय = अनुराग से आये हुए। सूएहि = सूक्तियों द्वारा, प्रशस्ति-गान द्वारा। पढिअं = पढ़ा।

इसके बाद, अन्य किसी एक दिन प्रातःकाल में महाराष्ट्र आदि के स्तुतिपाठक उस सम्राट् कुमारपाल के प्रति अनुराग के कारण उस (कुमारपाल) के यहाँ आये और उन्होंने पार्थिवोचित (राजा के योग्य रीति से) इस प्रकार प्रशस्ति-गान किया— ॥४८॥

४९. हय=हत, नष्ट। तम-पसरो=घने अन्धकार का प्रसार। पच्चूसो=सबेरे-सबेरे। दिन्नग्घो=अर्घ्य दिया।

"हे राजन्, आप उस प्रातःकालीन सूर्य के समान हैं, जिसके उदित होते ही घनघोर अन्धकार भी नष्ट हो जाता है (अर्थात्, आपके सम्पर्क में आ जाने पर लोगों का अज्ञान नष्ट हो जाता है)। जिस प्रकार दुष्टों, चोरों एवं कुलटा स्त्रियों के लिए सूर्य प्रतिकूल होता है, उसी प्रकार आप भी उनके लिए (सर्वथा) प्रतिकूल हैं (अर्थात्, आप अपने प्रचण्ड शासन से दुष्टों, चोरों एवं शत्रुओं को तथा सदाचार से कुलटा स्त्रियों को सन्मार्ग पर ला देते हैं)। जिस प्रकार सूर्य को श्यामाक (साँवा) चावल एवं जल से अर्घ्य दिया जाता है, उसी प्रकार आपको भी राजाओं द्वारा अमूल्य हाथी, घोड़े एवं अन्य वस्तुएँ भेंट-स्वरूप प्रदान की जाती हैं। जिस प्रकार सूर्य, संसार के समस्त नेत्रों को आनन्द देने के कारण श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार, हे राजन्, आप भी अपने सदाचरण के कारण सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं" ॥४९॥

५०. दिस=दिसा। कुप्पिसंत=फैले हुए। जसभर=जस से भरे हुए, यश-रूपी मुकुट। देवय-हरए=देवगृह में। दिक्खाइरिया=दीक्षाचार्य। सिक्खायरिएहि=शिक्षाशास्त्र-पाठकों, शिक्षाचार्यों के। सह=साथ। उवसप्पंति=पधार रहे हैं।

"दिशाओं में फैले हुए यश-रूपी मुकुट को धारण करनेवाले हे राजन्, आपके देवता-गृह (मन्दिर) में दीक्षाचार्य अपने शिक्षा-शास्त्राचार्यों (शास्त्रपाठकों) के साथ पधार रहे हैं" ॥५०॥

५१. गय=गत, नष्ट। थीण=घना। खल्लीडे=खल्वाट, गंजा माथा। थुवआ=स्तुति में प्रवृत्त। एण्हि=अधुना।

"अन्धकार-रूपी केशों के नष्ट हो जाने पर तथा खल्वाट के समान आकाश के निरभ्र (मेघरहित स्वच्छ) हो जाने पर लोग भगवान् सूर्य की स्तुति में प्रवृत्त हो रहे हैं" ॥५१॥

५२. तुहिणोसारिणी=हिम को फैलानेवाला, हिम को उत्पन्न करने-वाला। पडंतं=पड़ते हुए। अगणंता=गणना नहीं करते हुए। उट्ठंति=उठ जाती हैं। वहुओ=कुलवधुएँ। पुरो=पहले ही। अज्जूणं=सासों के। विणय-गेज्झाण=विनय-भक्ति से युक्त।

"हिमाच्छादित आकाश से घोर हिमपात होते रहने पर भी उसके (शीतजन्य) कष्ट की गणना नहीं करती हुई, विनय-भक्ति-सम्पन्न कुलवधुएँ अपनी सासों के सोकर उठने के पूर्व ही स्वयं जाग जाती हैं" ॥५२॥

५३. कुट्टिम=रत्नों से बना हुआ घर। चउ-वारेसु=चतुर्मुखी, चतुर्मुखी द्वारवाला। सतिण्हमिण्हि=विरह-पीडा की आशंका से। कुणंति=करती हैं। देरागय=द्वार पर या भवन में आये हुए। पारावय=परेवा, कबूतर। रावोट्ठिय=शब्द सुनकर उठे हुए। पिय=प्रियतम। परीरम्भं=आलिंगन में बाँधना।

"रत्नों एवं मणियों से जड़े हुए चौमुखे घरों में, दिन में होनेवाली विरह-पीडा की आशंका के कारण, पत्नियाँ, प्रातःकाल में कबूतरों के स्वरों से जागे हुए अपने-अपने प्रियतमों को आलिंगन में बाँध लेती हैं" ॥५३॥

५४. पारेवय-भणिएहिं=कबूतर की बोली से। तेत्तिअमेत्तं=उतना-मात्र। रमेसु=रमण करनेवाली। वेसाओ वेश्याएँ। तेत्तिअमत्तं=उतना-मात्र। मग्गंति=दिखाते हैं। चलिअमेत्ते=चलने-मात्र से। भुअंगम्मि=विटजनों में।

"जिस समय कबूतरों की गुनगुनाहट प्रारम्भ हो जाती है, उसी से अपने समय का ज्ञान कर, उतने समय तक गणिकाएँ भोग-क्रीडाओं में संलग्न रहा करती हैं तथा कबूतरों की गुनगुनाहट से ही प्रातःकाल का ज्ञान प्राप्तकर विट लोग (रसिक लोग) अपना-अपना मार्ग खोजते हुए वेश्यालयों से अपने घरों की ओर जाते हैं" ॥५४॥

५५. अद्द=आर्द्र, सरस। नहंकाण=नखचिह्न। पियाण=प्रियाओं को। अल्ल=आर्द्र, स्नेहमिश्रित। आलावयाण=आलापों से युक्त। विलयाओ=रमणियाँ। अंकमंसुअ ओल्लीहिं=गोद को आँखों के अश्रुपंक से। उल्लंति=गीली करती हैं। ओल्ल=आर्द्र, गीले। नक्खंका=नखचिह्नों से।

"प्रियतमों द्वारा अंकित सरस नखचिह्नों एवं स्नेहमिश्रित वार्त्तालापों से मुग्ध रमणियाँ अपने गीले नखचिह्नों एवं प्रातःकाल होने के कारण प्रियतम के वियोगजन्य दुःख के कारण प्रवाहित होनेवाले आँसुओं से अपने प्रियतमों की गोद गीली कर देती हैं" ॥५५॥

५६. निअठाण-मीलणं=अपने स्थान को मुद्रित (बन्द)। पिक्खिऊण=देखकर। चिंतापरा=चिन्ताग्रस्त। मिउल्लावा=मृदु उल्लाप करते हुए। नीलुप्पल-पेडे=नीलकमल के कोश पर। पिंडिऊण=मिलकर, बैठकर। भसला=भ्रमर। रुअंति व्व=मानों रोते हैं।

"अपने स्थान को मुद्रित (बन्द) देखकर चिन्ताग्रस्त भौंरे नीलकमल के कोश पर बैठकर धीरे-धीरे उल्लाप (गुंजार) करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानों अपने को निराश्रित मानकर रुदन कर रहे हों" ॥५६॥

५७. किंसुअ-कुसुमायंबो=किंशुक-पुष्प के समान रक्त वर्णवाली। केसुअ-दल सामल=किंशुकदल के समान श्यामल। विगयमेरं=सर्वत्र व्याप्त, सीमातीत। दलिऊण=नष्ट करके। अंधयारं=अन्धकार को। दंसइ=दिखाता है। पुहवीइ=पृथिवी-मण्डल को। पहं=मार्ग को। अरुणो=बालसूर्य।

"किंशुक-दल के समान श्यामल, सर्वत्र व्याप्त—सीमातीत अन्धकार को नष्ट करके किंशुक-पुष्प के समान रक्त वर्णवाला सूर्य पृथ्वी-मण्डल को मार्गदर्शन करा रहा है" ॥५७॥

५८. काउं=करने के लिए। महाविलं=गुफा, कन्दरा। अतम-मूसयं=अन्धकार-रूपी मूसे से रहित। कयपडसुए=प्रतिज्ञा करके। सूरे=सूर्य। लक्ख=लाख, लाक्षा। हलद्द-बहेडयरत्त व्व=हल्दी-बहेड़ा के समान लाल। करा=किरणें। विअंभंति=ऊँचे-नीचे फैल रही हैं।

"कन्दराओं को अन्धकार-रूपी मूसे से रहित करने की प्रतिज्ञा करके ही सूर्य मानों लाक्षा, हल्दी एवं बहेड़े के वर्ण के समान अपनी किरणें सर्वत्र फैला रहा है" ॥५८॥

५९. विरइअ=विरचित। हलद्दि-कंदाभ-दीवओ=हल्दी एवं कन्द की आभा (कान्ति) के समान आभावाला दीप। नवहलिद्दि रत्तकरो=नवीन हल्दी के समान रक्त वर्ण। अहलिद्दा-राओ=घना स्नेह। कामउ व्व=कामुक के समान। पुव्वं=पूर्व दिशा। भअइ=सेवन कर रहा है। सूरो=सूर्य।

"हल्दी और कन्द के समान छविहीन आभावाले दीपक की तरह सूर्य अपनी नवीन हरिद्रा के समान कुछ रक्ताभ वर्ण की किरणों से युक्त होकर घने स्नेह से युक्त कामीजन की तरह पूर्वदिशा का सेवन कर रहा है" ॥५९॥

६०. पिक्कंगुअं व=पके हुए तापसवृक्ष के फल के समान। निवडइ=गिरता है, अस्ताचल की ओर जा रहा है। पिंक्किगुअ धूसरो=पके हुए तापसवृक्ष के फल के समान धूमिल वर्णवाला। ससी=चन्द्रमा। एस=यह। सिढिलकरो=मन्द किरणोंवाला। सढिलंगो=मन्द बिम्बवाला। तित्तिर-मइल=तीतर के समान मलिन। प्फुड-कलंको=स्पष्ट कलंक-वाला।

"पके हुए तापसवृक्ष के फल के समान धूमिल (मन्द) किरणोंवाला, तीतर के समान मलिन होने से स्पष्ट ही कलंकयुक्त दिखाई देनेवाला तथा छवि-विहीन यह चन्द्रमण्डल पके हुए तापसवृक्ष के फल के समान ही अस्ताचल की ओर गिरा जा रहा है" ॥६०॥

६१. इअ = इस प्रकार। आसंसन्ति = प्रशंसा करते हैं। नि-सीह = हे नृसिंह ! सिंहदत्ताइणो दिआ = सिंहदत्त आदि द्विज (ब्राह्मण)। तुज्झ = तुम्हारी। वीसं = बीस। तीस = तीसं। कप्पे = कल्प। जयसु = जयशील रहो। दुजीहारि-नीसंक = गरुड के समान निर्भय।

"हे नृसिंह (कुमारपाल), सिंहदत्त आदि द्विज आपकी इस प्रकार प्रशंसा कर आशीर्वाद दिया करते हैं कि गरुड के समान निर्भय तुम बीस-तीस कल्पों तक जयशील बने रहो" ॥६१॥

६२. अदुइअ-रवि-भा-विइए = अद्वितीय सूर्य की प्रभा से युक्त। गयणे = गगन में। जह = जिस प्रकार। पाइयम्मि = प्राकृत-भाषा में। दोवयणं = द्विवचन। कत्थ वि = कहीं भी। नत्थि = नहीं पाया जाता। तमो = अन्धकार। अहिनिवास-लोअम्मि व = सर्पों के निवासलोक की तरह। णुमन्नो = निमग्न, प्रविष्ट।

"जिस प्रकार प्राकृत-भाषा में कहीं भी द्विवचन नहीं पाया जाता, ठीक उसी प्रकार सूर्य की अद्वितीय प्रभा से पूर्ण आकाश में कहीं भी अन्धकार नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह सर्पों के निवास-लोक पातालगृह में जा छिपा है" ॥६२॥

६३. जरढोच्छु-रुई = परिपक्व इक्षु के समान रुचिकर। चंदो = चन्द्रमा। निसपिअ-पावासुओ व्व = निशारूपी प्रिया से वियुक्त होने से छवि-विहीन के समान। नो = नहीं। सहइ = सुशोभित होता है। सच्चजहुट्ठिल = हे सत्यवादी युधिष्ठिर ! सूरे =

सूर्य। भू-सग्ग-दुहाइअ=पृथिवी एवं स्वर्ग को दो भागों में विभक्त कर। करोहे=किरणसमूह।

"हे सत्यवादी युधिष्ठिर, संसार को पृथ्वी एवं स्वर्ग-रूप दो भागों में विभक्त कर दिये जाने के कारण दोनों भागों में व्याप्त सूर्य की किरणों के समूह से परिपक्व इक्षु के समान रुचिकर लगनेवाला चन्द्रमा भी मानों निशारूपी अपनी प्रियतमा से वियुक्त होने के कारण छविहीन हो जाने से शोभा-सम्पन्न नहीं लग रहा है" ॥६३॥

६४. धम्मे=धर्म में, सदाचार में। जहिट्ठिला=युधिष्ठिर। दोहाइअ=दो भागों में विभक्त। पवहा=प्रवाह, समूह। दुहा वि=दो प्रकार की। मलपटलं=बाह्य-आभ्यन्तर मल-पटल। ओज्झर=निर्झरों में। निज्झरिणीसु=नदियों में। ण्हाऊण=स्नान करके। खिवन्ति=फेंक देते हैं। वम्हाणा=ब्राह्मण।

"जिसके राज्य में लोग युधिष्ठिर के समान ही धर्मात्मा हैं तथा सदाचार-रूपी प्रवाह को झरनों एवं नदियों में विभक्त कर उनमें स्नान करनेवाले जहाँ के ब्राह्मण अपने वाह्य एवं आभ्यन्तर मल को दूर कर देते हैं" ॥६४॥

६५. हय=विदीर्ण। कम्हार-हरडई-चिक्कण=काश्मीरी हर्रे के समान घने और चिकने। तिमिरस्स गहिय-पाणीया=घने अन्धकार-रूपी जल को करपुट में लेकर। पाणियतडम्मि=सरोवरों के तट पर। विप्पा=विप्र। अजुण्ण-सूरस्स=बालसूर्य के लिए। देंतग्घं=अर्घ्यदान करते हैं।

"विदीर्ण किये हुए कश्मीरी हर्रे के समान घने अन्धकार-रूपी जल को ही मानों अपने करपुटों में लेकर जहाँ के ब्राह्मण सरोवरों के तट पर खड़े हाकर बालसूर्य के लिए अर्घ्यदान करते हैं" ॥६५॥

६६. जिण्णतमं=नष्ट अन्धकार। मलहीणा=निर्मल, मलरहित, अज्ञानरहित। अहूण-तेअं=द्युतिमान्, उग्र प्रतापवाला।

विहीण-अन्नपहं = सन्मार्ग-प्रदर्शन के कारण विपरीत-मार्ग को ध्वस्त कर देनेवाले। अविहूणं = अत्यन्त ऊँचे पूर्वांचल की चोटी पर स्थित, समस्त राजाओं में श्रेष्ठ। तूह-दिआ = तीर्थ-स्वरूप द्विज। थुणंति = स्तुति करते हैं। तित्थे = तीर्थस्थलों में। तं = तुम्हें।

"जहाँ के तीर्थस्थलों में द्विज लोग आपके समान ही अन्धकार को नष्ट कर देनेवाले, निर्मल, द्युतिमान्, सन्मार्ग प्रदर्शित करनेवाले, पूर्वांचल की चोटी पर स्थित सूर्य की स्तुति किया करते हैं" ॥६६॥

६७. पेऊसासण-सामिय = इन्द्र। दिस-आमेले = (पूर्व) दिशा में सुशोभित। उअ = देखकर। केरिस = कैसा। एरिसिआओ = ऐसा। बहेडयाभाओ = बहेड़े की आभा के समान। नह-पेढे = आकाशपीठ में।

"पूर्व दिशा के आकाशमण्डल में सुशोभित सूर्य-किरणों के समक्ष बहेड़े की आभा के समान तारे कहाँ चले गये ?" ॥६७॥

६८. चत्तूण = छोड़कर। नेड-पीढं = घोंसला। नीड-घरा = घोंसला। मउलिआ = मुकुलित (रात्रि में)। महीमउड = पृथिवी-मुकुट! विद्दायनिद्दमुड्डंति = आलस्य-रहित होकर उड़ रहे हैं। घरोवरिं = घरों के ऊपर। रुक्ख-अवरिं = वृक्षों के ऊपर।

"हे पृथिवीमुकुट, रात्रि के समाप्त होने पर पक्षीगण अपने-अपने घोंसले छोड़कर आलस्य-रहित होकर घरों एवं वृक्षों के ऊपर उड़ने लगे हैं" ॥६८॥

६९. गुरुअभिउडीहिं = बड़ी-बड़ी भौंहोंवाले। वार-वालेहिं = द्वारपालों द्वारा। पडिक्खलिज्जंता = रोके जाने पर। निरुद्धछीआ = छींक रोककर।

"बड़ी-बड़ी भौंहोंवाले द्वारपालों से गर्जनापूर्वक रोके गये (बड़े-बड़े देशों के) पौरुषवाले पुरुष (राजा आदि) भी (हमारे स्वामी के कार्यों में कहीं अपशकुन न हो जाए, इसी भय से छीकों को रोकने के लिए) अपनी नाक वन्द करके, हे राजन्, आपकी राजसभा में आते हैं" ।।६९।।

७०. मुसलधर=मूसलधारी। दट्ठु=देखकर। ऊसुय=उत्सुक। निवा=राजा। रइ-सूहव-सुहय=कामदेव के समान सुन्दर।

"मूसल की तरह भुजाओंवाले तथा कामदेव के समान सुन्दर (हे राजन्), आपके मुखकमल को देखने के लिए उत्सुक आँखोंवाले मूसलधारी राजा भी बार-बार रोमांचित हो रहे हैं" ।।७०।।

७१. अणउच्छन्नोच्छाहो=अखण्ड उत्साहवाला। रिउ=रिपु, शत्रु। दुसहो=दुस्सह। पयावेण=प्रताप से। ओट्ठिओ=उठा।

इस (प्रशस्ति-गान) के पश्चात् अखण्ड उत्साहवाला तथा शत्रुओं के लिए असहनीय और दुस्सह प्रतापवाला वह राजा कुमारपाल (अपनी) शय्या से जागकर उठा ।।७१।।

७२. थुणिय=स्तुति की। सव्वण्णु=सर्वज्ञ की। परमप्पं=परमात्मा। कुऊहलत्थेसु=कुतूहल-योग्य वस्तुओं में।

कुतूहल करने में कुशल लोगों द्वारा उत्पन्न की गई कुतूहल-योग्य वस्तुओं में भी कौतुक उत्पन्न करनेवाला, विवेकियों में भी विवेकशील और श्रेष्ठ वह राजा कुमारपाल सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति करके—।।७२।।

७३. अमलोव्वीढ=निर्मल एवं सूक्ष्म। दुऊलो=रेशमी वस्त्र, रेशमी चादर। दिन्नकरो=सूर्य, कर देनेवाला। अत्थाणि=राज्य-सिंहासनवाला कक्ष। सोहिल्लं=सुशोभित।

निर्मल एवं सूक्ष्म रेशमी-वस्त्रों को धारण कर तथा रेशमी चादर से सुशोभित, सूर्य-किरणों को भी दण्डित (तिरस्कृत) करनेवाला (राजा

कुमारपाल) फहराते हुए सुन्दर सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों (परदों आदि) से सुसज्जित अपने राज्य-सिंहासनवाले कक्ष (राजसभा) में जा पहुँचा ।।७३।।

७४. भुमयाइ-वसगा = भृकुटियों के वश में । पेसणिक्क = दौत्य-कर्म । हणुमंता = हनुमान् । पुरो = सामने । निविट्ठा = बैठे । निवा = राजा । नमिरा = नम्र ।

राजा कुमारपाल की भृकुटियों के वश में होकर कार्य करनेवाले, दौत्य-कर्म में हनुमान् के समान तथा पराक्रम के कारण फड़कती हुई भुजाओं-वाले राजा उसके आगे (अर्थात् सामनेवाली प्रथम पंक्ति में) विनम्र होकर बैठे ।।७४।।

७५. पासम्मि = पास में । महूअ = महुआ । गोराओ = गौर वर्णवाला । वज्जंत = बजता हुआ ।

वहाँ, राजा कुमारपाल के पार्श्व में मधूक (महुए) के समान गौर वर्ण-वाली और मधूक के समान ही मधुर वाणी बोलनेवाली और बजते हुए मणि-जटित स्वर्ण-निर्मित नूपुरों से सुशोभित वनिताएँ खड़ी हुईं ।।७५।।

७६. कोहंडि-कुसुम-मउवीओ = कूष्माण्डी के फूल के समान कोमलांगी । काम-तोणीर-थोर-कबरीओ = कामदेव के तूणीर के समान लम्बी और घनी वेणीवाली । निम्मोल्लंगय-मंडिय-कोप्परया = अमूल्य बाजूबन्दों से मण्डित भुजाओंवाली । गहिय-तंबोला = ताम्बूल लिये हुई ।

कूष्माण्डी के फूल के समान कोमलांगी, कामदेव के तूणीर के समान लम्बी एवं घनी वेणीवाली, अमूल्य बाजूबन्दों से मण्डित भुजाओंवाली युवतियाँ ताम्बूल लेकर (कुमारपाल के पास खड़ी थीं) ।।७६।।

७७. विब्भम = विलास, विविध प्रकार के हाव-भाव । गलोइ-मेघा = अमृत-वर्षा करनेवाली मेघ जैसी । रम्भा-थोणा-निहोरु-थूणाओ =

केले के पेड़ (स्तम्भ) के समान जाँघोंवाली। तोणीहविअ=तूणीर बनकर। सयं=स्वयं। रइ-वइणो=कामदेव को। तूण-छड्डवणा=तूणीर को नष्ट करनेवाली।

विविध प्रकार के हाव-भावों से अमृत बरसानेवाली और केले के स्तम्भ के समान जाँघोंवाली युवतियों मानों स्वयं ही तूणीर बनकर कामदेव के तूणीर को नष्ट कर रही थीं ॥७७॥

७८. सरउग्गय-मयलंछणसरिच्छ-वयणाओ=शरद् ऋतु के शुभ्र चन्द्रमा के समान मुखवाली। वरजुवईओ=श्रेष्ठ युवतियाँ। चामरदप्पण-हत्था=चँवर एवं दर्पण हाथ में लिये हुई। अक्क-सकंती=सूर्य के समान कान्तिवाली। किसंगीओ=कृशांगियाँ।

शरद्-ऋतुकालीन निर्मल चन्द्रमा के समान मुखवाली तथा हाथों में चँवर एवं दर्पण धारण किये हुई कृशांगी युवतियाँ सूर्य की कान्ति के समान दिप रही थीं ॥७८॥

७९. मत्तेभ=मदोन्मत्त हाथी (के समान)। मउअ=मन्द। गमणे=गमन। तस्सिं=उसमें, सभामण्डप में। माउक्क=मृदुल। आसणासीणे=आसन पर बैठा। माउक्के=मृदुल। अमउत्ते वि=अमृदुल होने पर भी। सुइ-गिराणं=वेदवाक्य आदि। फुडगिरेहिं=स्पष्ट वाणी।

मदोन्मत्त हाथी के समान मन्द गमन करता हुआ राजा कुमारपाल जब अपने सुकुमार आसन पर बैठा, तभी ब्राह्मणों के मुख से कुछ कर्कश होने पर भी वेदवाक्य की स्पष्ट मधुर ध्वनि प्रकट होने लगी ॥७९॥

८०. आसंसिअं दिएहिं=आशीर्वाद दिया, प्रशंसा की। किवालु-हिअओ=कृपालुहृदय। हवेहि=रहें। महिवट्ठे=पृथिवी-मण्डल पर। तुह=तुम्हारे। पिट्ठचरा=पीछे चलनेवाले। हवंतु=हों। नागा वि=नाग भी। पट्ठचरा=अनुकरण करनेवाले हों।

ब्राह्मणों ने आशीर्वाद देते हुए कहा : "पृथ्वी-मण्डल पर आपका हृदय कृपालु रहे, समस्त देव एवं नाग आपके पीछे-पीछे चलनेवाले बनें" ॥८०॥

८१. खग्गि = गैंड़ा नामक पशु के। सिंगपत्ते = सींग के बने बरतन में। मसिणे = चिकने। मसणेण चन्दणेण = चिकने चन्दन से। गहे = ग्रहों को। अच्चिअ = पूजा कर। रायमयंको = राजा-रूपी चन्द्रमा। अकासि = किया। मिअंक-निहं = चन्द्रमा के समान।

आशीर्वचन के बाद ब्राह्मणों ने गैंड़े के अत्यन्त चिकने सींग के बने हुए बरतन में रखे गये चन्दन से ग्रहों की पूजा की और राजा के ललाट पर उन्होंने चन्द्रमा की तरह (गोल) तिलक कर दिया ॥८१॥

८२. मिच्चु-अवमच्चु-हरणे = मृत्यु एवं अपमृत्यु का अपहरण करनेवाले। दिजे = ब्राह्मणों को। विसज्जिअ = विसर्जित कर। निसामिआ = सुनी। रिउ-संग-भंजणेणं = शत्रुओं के उत्कर्ष को नष्ट करनेवाले। घिट्ठाघट्ठाण = धृष्ट एवं अधृष्ट (शिष्ट) लोगों की। विन्नत्तो = विज्ञप्ति, विनती।

इसके बाद मृत्यु एवं अपमृत्यु को दूर करनेवाले ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक विसर्जित कर शत्रुओं के उत्कर्ष को नष्ट करनेवाले राजा कुमारपाल ने धृष्ट एवं शिष्टों के बारे में विज्ञप्ति सुनी ॥८२॥

८३. पुहवीस = राजा। उउवसंतो = वसन्त ऋतु। निवुत्त-तिलक्खवणो = श्रेष्ठ तिलक आदि उत्सव के समाप्त होने पर। कलि-निअत्तो = कलियुग को समाप्त कर देनेवाले। वंदारय-वुंदारयसमो = इन्द्र के समान। पयट्टो = प्रवृत्त हुआ। तिहिं = तिथि को। सोउं = सुनने के लिए।

वसन्त ऋतु के समान मल या दोष से रहित, देवतुल्य वह राजा श्रेष्ठ तिलक आदि के उत्सव समाप्त होने पर अपनी परम्पराओं के तिथिक्रम को सुनने के लिए तत्पर हुआ ॥८३॥

८४. निव-उसहो=नृपश्रेष्ठ। दिय-वसहे=प्रधान ब्राह्मणों को। पिउ-कम-माउहर-आगए=पिता और माता के वंश से आनेवाली। तत्तो=वंश-परम्परा के तिथिक्रम को सुनकर। तप्पिऊणं=तर्पित करके, सन्तुष्ट करके। माइ-हरयम्मि=माता के घर में।

पितृवंश एवं मातृवंश की परंपरा के तिथिक्रम को सुनने के बाद वह नृपश्रेष्ठ कुमारपाल उन आगन्तुक प्रधान ब्राह्मणों को भरपूर दान से सन्तुष्ट करके अपनी माता के घर में आया ॥८४॥

८५. माईण=माता के। अमोसासीसयाण=सत्य आशीर्वचनों से। अमूस-परिवारो=सत्यवादी परिवारवाला। अमुसावाई=सत्यवादी। वुट्ठो=वृष्टि की। धण-वुट्ठी रयण-विट्ठीहिं=धन-वृष्टि तथा रत्नवृष्टि से।

कभी असत्य का आश्रय न लेनेवाले परिवार से युक्त सत्यवादी उस राजा कुमारपाल ने माता के सत्य आशीर्वचन सुनकर धन एवं रत्नों की वृष्टि की ॥८५॥

८६. विट्ठघण=वर्षा के बाद (शुभ्र आकाश जैसा)। निम्मलेणं=निर्मल। देवाणं=देवों का। पिहय=पृथक्। पुहय=पृथक्। देवीणं=देवियों का। तेणादिट्ठं=उसके आदेश से। मुइंगिकर-ताडिय-मिइंग=मृदंग बजानेवाले के हाथ से बजाये गये मृदंग।

वर्षा ऋतु के बाद निर्मल आकाश के समान स्वच्छ हृदयवाले उस राजा कुमारपाल के आदेश से मृदंग बजानेवालों ने मृदंगवादन के साथ-साथ देवों एवं देवियों के पृथक्-पृथक् गीत प्रस्तुत किये ॥८६॥

८७. कुल-जरईणं=कुल की वृद्धा महिलाएँ। नत्तिअ-नत्तुअ=पौत्र-पौत्रियों से। सहिआण=युक्त। वसु=द्रव्य का। अदासि=दान किया। धरणि-बिहप्फइ-सीसो=पृथिवी पर बृहस्पति के शिष्य उद्धव। बुहप्फइ-सरिच्छ-गुरु-पुरओ=बृहस्पति के सदृश गुरु के सम्मुख।

पृथिवी पर बृहस्पति के शिष्य (उद्धव) के समान ही उस राजा कुमारपाल ने बृहस्पति के सदृश अपने पुरोहितों के सम्मुख पौत्र-पौत्रियों से युक्त कुल की वृद्धाओं को प्रचुर धन दान किया ॥८७॥

८८. कुसुमविंट-तिक्ख-प्पणाइ=फूल के डण्ठल के समान तीक्ष्ण बुद्धि से। बहप्फइ व्व=बृहस्पति के समान। लच्छीए=लक्ष्मी की। काही=की। सहवेंटफलेहिं=डण्ठल-सहित फलों से। सवोंट-फुल्लेहिं=डण्ठल-सहित पुष्पों से।

पुष्प के डण्ठल के समान तीक्ष्ण प्रतिभावाले बृहस्पति के समान उस राजा कुमारपाल ने डण्ठल-सहित फलों एवं डण्ठल-सहित पुष्पों से लक्ष्मी की पूजा की ॥८८॥

८९. रिद्धि-हय-अणत्त-रिणो=अपने धन द्वारा ऋणियों के ऋणभार को उतारनेवाले। रायरिसि=राजर्षि। धणुह-वेअ-राम-इसी=धनुर्विद्या में रामऋषि, अर्थात् परशुराम के समान। रिज्जू=सरल। सहुज्जुएहिं-नरउसहेहिं=सरल स्वभाववाले नरश्रेष्ठों के साथ। निवइ-रिसहो=नृपश्रेष्ठ।

अपने धन द्वारा, ऋणों से पीडित व्यक्तियों को ऋणमुक्त कर देनेवाला एवं धनुर्विद्या में परशुराम के समान वह सरल चित्तवाला राजर्षि नृपश्रेष्ठ कुमारपाल सरल स्वभाववाले श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ चला ॥८९॥

९०. वसंत-रिउ-सरि-विलासओ=वसन्त ऋतु के समान विलासों से। गिम्ह-उउ-सरिस-लीलओ=ग्रीष्म ऋतु के समान लीलाओं से। महुर-तिव्व-तेआ-सरिच्छओ=मधुर एवं तीव्र तेज के समान (निरुपम)। समहरं=श्रमगृह को। दरिअ-आढिअं=योद्धा लोगों से व्याप्त।

वसन्त ऋतु के सुन्दर विलासों एवं ग्रीष्म ऋतु की लीलाओं से मधुर एवं प्रखर तेज के समान निरुपम वह राजा कुमारपाल योद्धा लोगों से व्याप्त श्रमगृह व्यायामशाला की ओर चला ॥९०॥

●

(शब्दार्थ एवं हिन्दी-अनुवाद)

द्वितीय सर्ग

१. पंकय=कमल। केसर=पराग। कंती=कान्तिवाला। अकिलिन्नो=अक्लान्त। हरिचवेल=सिंह के तल-प्रहार। चविलो=चपल। स-किसर=केशरयुक्त। सो=वह। दामो=माला। निवो=राजा। समं=श्रम (कुश्ती)। काउं=करने के लिए। पयट्टो=प्रवृत्त हुआ।

कमल के पराग के समान कान्तिवाला, अक्लान्त (थकावट से रहित), सिंह के चपल पंजे के समान हथेलीवाला तथा केशर-युक्त माला पहने हुए वह राजा कुमारपाल (व्यायामशाला में) श्रम (मल्ल-कला) करने में प्रवृत्त हुआ ॥१॥

२. गुरु-मण-थेणो=गुरु के चित्त को चुरानेवाला। रेवइ-देअर=रेवती के देवर (श्रीकृष्ण)। सीअ-दिअराण=सीता के देवर (लक्ष्मण)। बल-थूणो=बल को चुरानेवाला। सयं=स्वयं। अवेयणो=वेदना (थकावट) का अनुभव नहीं करनेवाला। सो=वह। मल्ल-सेलाण=शैल-समान मल्लों के लिए अथवा उच्च शरीर होने के कारण। विअणं=वेदना। काही=उत्पन्न कर दी।

(अपने कला-कौशल से) गुरु के चित्त को चुरानेवाला तथा रेवती रानी के देवर (श्रीकृष्ण) एवं सीता के देवर (लक्ष्मण) के बल को चुरानेवाला, अर्थात् अतिशय बलशाली राजा कुमारपाल ने (कुश्ती के समय) स्वयं तो वेदना (थकावट) का अनुभव नहीं किया, लेकिन उच्च शरीरवाला होने के कारण उसने शैल (चट्टान) के समान मल्लों के लिए वेदना (व्याकुलता अवश्य) उत्पन्न कर दी। ॥२॥

३. तस्स = उस। सणिच्छरपिउणो व्व = शनैश्चर के पिता (सूर्य) के समान। करहयं = कर से आहत। सिंघवं = नमक; घोड़ा। मल्लकुलं = मल्लों का समूह। घम्मजलोल्ल = पसीने की बूँदों से गीला। जायं = हो गया। स-सिन्न = अपनी सेना। पर-सेन्न = दूसरे की सेना। महिअं = प्रशंसनीय। पि = भी।

स्वसैन्य एवं परसैन्य द्वारा अत्यन्त प्रशंसित राजा कुमारपाल का मल्लसमूह उसके (कुमारपाल के) कराघात से आहत होकर सैन्धव (नमक) के समान इस प्रकार स्वेद-विन्दु से युक्त हो गया, जिस प्रकार कि शनैश्चर के पिता सूर्यदेव की प्रचण्ड किरणों से तप्त होकर सैन्धव जाति के घोड़े स्वेद-विन्दु से युक्त हो जाते हैं (श्लेषालंकार) ॥३॥

४. मुर-वेरिओ = मुर नामक राक्षस के शत्रु (श्रीकृष्ण)। रक्खिअ = रक्षा की गई। दइच्च = दैत्यों (के साथ)। कय = किया है। वइर = वैर। दइवय-सइन्नो = देवताओं की सेना की। गेण्हीअ = ग्रहण किया। तत्थ = उस (श्रमघर में)। कइलास-सओ-व्व = कैलास के शिव (के समान)। केलासे = कैलास (पर्वत) पर।

देवों की सेना की रक्षा के लिए दैत्यों के साथ शत्रुता मोल लेनेवाले तथा मुर नामक राक्षस के शत्रु श्रीकृष्ण के समान वह राजा कुमारपाल धनुष धारण कर अपनी व्यायामशाला में उसी प्रकार पहुँचा, जिस प्रकार शिव (महादेव) कैलास (पर्वत) पर (उदाहरणालंकार) ॥४॥

५. देव्वालक्खो = दैव (भाग्य) के समान लक्ष्य निर्धारित नहीं करनेवाला। दइवे वि असंको = भाग्य द्वारा घटित घटनाओं से निर्भय रहनेवाला। महिअले = पृथिवीतल पर। नव-दइव्वं = अपूर्व दैव (भाग्य) के समान। उच्चअ-नीचअ = ऊँचे-नीचे।

लक्खे=लक्ष्य-भेदन में। अणचुक्को=नहीं चूकनेवाला। अवर=शत्रु। धीर=धैर्य। हरो=हरण करनेवाला।

भाग्य के समान लक्ष्य निर्धारित नहीं करनेवाला एवं भाग्य द्वारा घटित घटनाओं से निर्भय रहनेवाला राजा कुमारपाल पृथिवीतल पर अपूर्व भाग्य के समान है। वह ऊँचे-नीचे लक्ष्य-भेदन में नहीं चूकने-वाला एवं शत्रु के धैर्य का हरण करनेवाला है ॥५॥

६. अन्नन्नं=परस्पर। सलाहिओ=जिनकी प्रशंसा की गई है। जोहेहिँ=योद्धाओं द्वारा। तह=तथा। बुहेहिँ=पण्डितों द्वारा। अन्नोन्नं=परस्पर। मणहर=मनोहर। सरलिअ=सरल। कुंचिअ=संकोच की क्रिया। उहय=उभय (दोनों)। पवट्ठो=प्रकोष्ठ (हाथ की कलाई) वाला। सरो=बाणों की। वुट्ठो=वृष्टि की।

(जिस राजा कुमारपाल की) दोनों भुजाओं की प्रशंसा (शक्तिशाली होने के कारण) योद्धाओं द्वारा परस्पर की गई है एवं (कोमल होने के कारण) विद्वानों द्वारा भी परस्पर प्रशंसा की गई है। उसी राजा ने अपने दोनों हाथों की मनोहर कलाइयों द्वारा सरल, संकोच (धनुष पर तीर चढ़ाते समय पहले हाथों को सीधा किया, तत्पश्चात् संकुचित किया) आदि क्रियाओं के साथ बाणों की वृष्टि की ॥६॥

७. कण्णो-कलिअ=कान तक खीचने पर पीछे गया हुआ। मणोहर=मनोहर। पउट्ठ=कर (पहुँचा, हाथ की कलाई)। सररुहेण=कमल द्वारा। नरवइणो=राजा का। लबिर=लम्बी। नाल=कमलनाल। सरोरुहवतंसिओ=कमल से विभूषित। व्वासि=के समान था। सधाणे=सन्धान करने (धनुष पर तीर चढ़ाने) पर।

धनुष पर तीर चढ़ाकर छोड़ते समय (कान तक खींचने पर) पीछे गया हुआ कमल-रूपी मनोहर पहुँचे (हाथ की कलाई) से राजा कुमारपाल का कान, जैसे लम्बे नालवाले कमल से विभूषित प्रतीत हो रहा था ॥७॥

८. कय = किया। दुज्जण = दुर्जन। सिर-विअणं = सिर में वेदना (सन्ताप) उत्पन्न करनेवाला। सिर = मस्तिष्क। कुसुमाहरणं = पुष्पों के आभूषण। अणसिरो-विअणं = सिर की वेदना को दूर करनेवाला। आवज्जिअ = वाद्य बजानेवाला। वाइअ = वाद्य। आउज्जस्स = मृदंग, ढोल आदि वाद्य। अदिट्ठ = अदृष्ट। पुड = वाद्यचर्म। दलणं = दलन करना, भेदना।

दुर्जनों के सिर में वेदना उत्पन्न करनेवाला, सिर पर केवल कुसुमों के आभरण धारण करनेवाला, वादक के वादित्र (संगीत) की ध्वनि से सिर की वेदना दूर कर देनेवाला तथा ढोल, पटह आदि वाद्यों के चर्म की ध्वनि पर अदृष्ट वस्तुओं का (तीर द्वारा) भेदन कर देनेवाला—॥८॥

९. सूसास = साँसों का उच्छ्वास। वलिअ = जरा-सी तिरछी। चिबुओ = चिबुक (ठुड्डी)। अकासि = (लक्ष्य भेद) कर दिया। गउअपुच्छ = गाय की पूँछ के समान आकृतिवाले बाण। पमुहेहिँ = प्रमुख। गा-अंक = शिवजी। कोंचरिउ = कार्त्तिकेय के। सुन्देरं = सौन्दर्य को। पत्तो = प्राप्त हुआ। धणुह-सुंडो = धनुर्विद्या में प्रवीण।

धनुर्विद्या में अति प्रवीण राजा कुमारपाल ने गाय की पूंछ जैसी आकृति-वाले प्रमुख तीरों द्वारा लक्ष्य-भेद कर दिया। लक्ष्य-भेद करते समय श्वास लेने के कारण उसकी ठुड्डी थोड़ी तिरछी हो गई, जिससे वह शिव के पुत्र कार्त्तिकेय के सौन्दर्य को प्राप्त हुआ (युग्मक) ॥९॥

१०. अह=अथ, इसके बाद। कुच्छेअयहत्थो=हाथ में तलवार लिये हुए। कोच्छेअय=तलवार की। कउसलेण=कुशलता से। दिट्ठो=देखा। कोवेस=विकसित। कउच्छे-अय=तलवार चलाने की विद्या में। सिद्धो=सिद्धहस्त, प्रवीण। त्ति=ऐसा। असेस=सभी। पउरेहिँ=पुरजनों (नागरिकों) द्वारा।

(धनुर्विद्या-प्रदर्शन के बाद) तलवार चलाने की विद्या में अतिशय सिद्धहस्त, अपने हाथ में चमकती तलवार लिये हुए राजा कुमारपाल सभी नागरिकों द्वारा देखा गया ।।१०।।

११. अब्भास=अभ्यास। गारवेणं=गौरव से। गोविअ=गोपित, आच्छादित। सव्वंग=सभी अंग। गउरवो=गौरवशील। फलए=फलक (तख्त) पर। नावाकारे=नौका के आकारवाले। तेरह-तेत्तीस-गुणो=तेरह और तैंतीसगुना, अर्थात् अनेक। आसि=था।

जिस राजा के सभी अंग अभ्यास के गौरव से गोपित (आच्छादित) हैं इस कारण गौरवशाली होता हुआ भी वह राजा (कुमारपाल) नौका के आकारवाले फलक (तख्त) पर पड़ा हुआ तेरह और तैंतीसगुना अर्थात् एक होकर भी अनेक रूपवाला, प्रतीत होता था ।।११।।

१२. घडिया=बनाया=हुआ। अथेर=नवयुवक। एक्कारएहि=लोहारों द्वारा। बहुएहिँ=अनेक। दुव्वहा=अतिकठिन। सत्ती=शक्ति नामक आयुध। वेइल्ल=विकसित। केल=केला। कन्नेरयं=कनेर के फूल के समान। व=अथवा। भामिय=घुमा करके। भुवि=पृथिवी पर। निहित्ता=रख दिया।

अनेक नवयुवक लोहारों द्वारा बनाये हुए अत्यन्त कठिन 'शक्ति' नामक आयुध को (राजा कुमारपाल ने) खिले हुए कदली एवं कनेर के फूल के समान घुमा करके पृथिवी पर रख दिया ।।१२।।

१३. विअइल्ल = विकसित। कण्णिआरय = कनेर के फूलों से। कयलेहिँ = केलों से। ऐ-अइ = अरे-अरे। त्ति = ऐसा। भणिरेहिँ = बोलते हुए। बोर = बेर नामक फल। पोप्फल = सुपारी। पोरं = ठोस रूपवाले। जोहेहिँ = योद्धाओं द्वारा। मन्नेहिँ = माननेवाले। सा = वह (शक्ति : आयुध)। महिआ = पूजी गई।

जब राजा कुमारपाल ने उस विशेष आयुध (शक्ति) को उठाया, तब बेर और सुपारी के समान कठोर योद्धा (आश्चर्य से) 'अरे-अरे' शब्द करने लगे; क्योंकि अभी तक वह आयुध किसी के भी द्वारा उठाया नहीं जा सका था। (पूर्वकाल में) विकसित कनेर और कदली के फूलों से उसकी केवल पूजा ही की जाती थी ॥१३॥

१४. नोमालिअ = सुगन्धित फूलवाली लता। नोहलिआ = नूतन और अल्प फलवाली लता। सोमालाहिँ = सुकुमार महिलाओं द्वारा। सलोण = लावण्ययुक्त। मोहाहिँ = मोहिनी महिलाओं द्वारा। तस्स = उस (राजा) के। उब्भमियं = (ऊपर से) उतारा गया। लवण = नमक। सुकुमाल = सुकुमार। मऊहमालिस्स = मयूख (कान्ति) धारण करनेवाले के।

(जब राजा ने उस आयुध को उठाया, तब) उस कान्तियुक्त एवं सुकुमार राजा के ऊपर, सुगन्धित फूल एवं अल्प फलवाली नूतन लता के समान सुकुमार तथा लावण्ययुक्त मोहिनी युवतियों द्वारा नमक उतारा गया (लवण द्वारा स्वागत-सम्मान अथवा दूसरों की कुदृष्टि दूर करने की विधि पूरी की गई) ॥१४॥

१५. चोद्दहमणु = चौदह मनुओं। चोग्गुणओ = चौगुना, चारगुना। भुवण-चउद्दहय-वइ = चौदह भुवनों के पति, अर्थात् विष्णु। चउग्गुणओ = चारगुना, चौगुना। चोत्थे = चौथा। जुगे = युग में। ति-पुरिस = त्रिपुरुष—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश।

चउत्थओ = चौथा (पुरुष)। लक्खिओ = देखा गया। तया = उस समय।

वह राजा कुमारपाल नमक उतारने की घड़ी में चौदह मनुओं से भी चारगुना अधिक (हितकारी), चौदह भुवनों के पति, अर्थात् विष्णु से चार-गुना अधिक (रक्षक) एवं कलियुग में भी ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीनों पुरुषों में चौथे पुरुष के समान देखा गया (अर्थात्, वह ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की कोटि का प्रतीत हुआ) ।।१५।।

१६. **सागोक्खल = सागवान (लकड़ी) का ऊखल, अर्थात् मुद्गर। खइरोहल = खैर (लकड़ी) का ऊखल (मुद्गर)। लोहाऊखल = लोहे का बना ऊखल (मुद्गर)। सिला-उलूखलया = शिला—पत्थर का बना ऊखल (मुद्गर)। चक्केण = चक्र से। तेण = उस राजा द्वारा। दलिआ = चूर्ण किये गये। चोव्वारं = चार प्रहारों द्वारा। चउव्वारं = चार बार। पुण = पुनः।**

उस राजा कुमारपाल ने अपने चक्र के चार प्रहारों द्वारा सागवान वृक्ष के ऊखल (मुद्गर), खैर वृक्ष के ऊखल (मुद्गर), लोहे के बने ऊखल (मुद्गर) एवं पत्थर के बने ऊखल (मुद्गर) को चार बार चूर्ण किया, अर्थात् एक-एक प्रहार में एक-एक ऊखल को उसने चूर्ण किया। (सम्भवतः, यह क्रिया पूर्वकाल में शकुन या शक्ति-प्रदर्शन के अन्तर्गत आती थी) ।।१६।।

१७. **इअ = इस प्रकार। रइअ = रचा गया। कोउहल्लो = कौतूहल। कोहल-दक्खेहिँ = कौतुक-क्रिया में दक्ष। तक्किओ = तर्क किया गया। उअ = अथवा। कण्हो = कृष्ण। एस = यह राजा। इहं = इस (पृथिवी पर)। भरहेसर-चक्कवट्टी = भरतेश्वर चक्रवर्त्ती। ओ = अथवा।**

राजा कुमारपाल द्वारा रचे गये कौतूहल (धनुष, तलवार, शक्ति एवं चक्र आदि चलाने की विद्या) को देखकर कौतुक-क्रिया में प्रवीण पुरुषों द्वारा

तर्क किया जाने लगा कि यह राजा कुमारपाल इस पृथिवी-मण्डल पर कृष्ण का अवतार है अथवा भरतेश्वर चक्रवर्त्ती का ॥१७॥

१८. ओआरे=अपकार करने पर। अवयारक्खमेण=उचित दण्ड देने में समर्थ। तेण=उस। अवसद्दरहिएण=अपशब्द से रहित (यशस्वी)। सेल्ल-कला=बरछी (भाले) की कला। अवयासे= प्रकट करने में। ओआसो=स्फूर्त्ति (उत्साह)। भग्गो=भग्न। जोहाण=योद्धाओं की।

अपकार करनेवाले को उसका उचित दण्ड देने में समर्थ एवं अपशब्द से रहित (यशस्वी) उस राजा कुमारपाल ने अपनी बरछी (भाले) की कला के प्रदर्शन द्वारा योद्धाओं के उत्साह को भी नष्ट कर दिया ॥१८॥

१९. पन्नास-पलो=पचास पल। अवगओ=ठहरा हुआ। किं= क्या। जलणो=अग्नि। रवि=सूर्य। त्ति=ऐसा। उअ= अथवा। रवि=सूर्य। करे=हाथ में। उपहसिय=उपहसित; तिरस्कृत। परसुरामस्स=परशुराम के लिए। ऊहसिए= तिरस्कृत। पवी=वज्र। महापरसू=बड़ा भारी फरसा।

परशुराम के वज्रकल्प विशाल फरसे को भी तिरस्कृत कर देनेवाला, राजा कुमारपाल के हाथ में स्थित पचास पल (तौल-विशेष) के बराबर भारी फरसा ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह साक्षात् अग्नि है अथवा सूर्य ॥१९॥

२०. सूल-कलाइ=त्रिशूल-कला में। णुमण्णो=निमग्न। सीर-णिसण्णो=हल-रूप आयुध में निमग्न। कित्ति-पंगुरणो=सर्व-श्रेष्ठ कीर्त्तिवाला। किच्ची-पाउरणं=शिव की। सिइ-पावरणं=बलभद्र की। अणुकाही=अनुकृतिवाला।

सर्वश्रेष्ठ कीर्त्तिवाला वह (राजा कुमारपाल) त्रिशूल-कला में निमग्न शिव की एवं हल-रूप आयुध में निमग्न बलभद्र की अनुकृति (प्रतीत होता) था ॥२०॥

२१. राय-वाडि-अत्थं = राज्य के कार्य से बाहर जाने के निमित। नाओ = नाग (हाथी)। आणाइओ = लाया गया। रिउ-घरट्टो = शत्रुओं को पीस डालनेवाली चक्की जैसी। पुहइसइसेण = पृथिवी के इन्द्र के लिए। अगरु-सुरहि-मओ = अगरु (उबटन) की सुगन्धि से मदोन्मत्त। सुकुसुम-सुतारो = सुकुसुम एवं सुतारा नामक आभूषण।

शस्त्राभ्यास के पश्चात् राज्य-कार्य से बाहर जाने के लिए पृथिवी के इन्द्र, अर्थात् उस राजा कुलारपाल ने हाथी मँगवाया। वह हाथी शत्रुओं को पीस डालनेवाला, अगरु (उबटन) की सुगन्धि से मदोन्मत्त एवं सुकुसुम और सुतारा नामक आभूषणों से सुसज्जित था ॥२१॥

२२. सचमर-कण्णो = जिसके कानों पर चँवर डुल रहे हैं। विदुरो = धीर-गम्भीर। गय-पावो = निष्पाप। देव = देवता। दुज्जओ = दुर्जेय। विजणे = अकेला होने पर भी। धरिओ = स्थित। पर-वारण-कवलण = शत्रु के हाथियों को खा जाने (विनाश करने) में। नत्तंचर-चरित्तो = राक्षस की तरह आचरणवाला।

जिसके कानों पर चँवर डुल रहे हैं, जो धीर-गम्भीर है, अकेला होने पर भी, देवताओं के लिए भी दुर्जेय है और जो शत्रुओं के हाथियों का विनाश करने में राक्षस का आचरणवाला है, ऐसे उस हाथी को उपस्थित किया गया ॥२२॥

२३. बालक्क-मुहो = बालसूर्य के समान मुखवाला। सुहकर = सुखकर। गज्जी = गरजनेवाला। सुहयर-गई = सुखकर गति (चाल) वाला। इअ = इस प्रकार। थुणिओ = स्तुत। जग-आगमिओ = जगत में विख्यात। बहुतर-आअमिअ-कलेहिँ = अनेक कलाओं में कुशल व्यक्तियों द्वारा। बहुअरयं = अत्यन्त प्रशंसित।

विविध कलाओं में कुशल पुरुषों ने उस हाथी की इस प्रकार स्तुति (प्रशंसा) की : "यह बालसूर्य के समान (देदीप्यमान) मुखवाला है, इसकी सुखकर गर्जना और सुखकर गति जगत् में विख्यात एवं अत्यधिक प्रशंसित है ॥२३॥

२४. जलयर = जलचर। अजलचर-वई = स्थलचर जीवों के स्वामी। जस्स = जिसका। इन्धं = चिह्न। रुसा-पिसाजी = क्रोध से चाण्डाल। सुहदेसु वि = सुख देनेवालों में भी। सुहओ = सुखद। एरिस = ऐसा। उण = पुनः। सुरेहो = ऐरावत।

जो (हाथी) जलचर एवं थलचर प्राणियों में स्वामी के समान (सर्वश्रेष्ठ) है, क्रुद्ध होने पर चाण्डाल के समान हो जाना जिसका विशिष्ट चिह्न (लक्षण) है और जो सुख देनेवाले पदार्थों से भी अधिक सुख देनेवाला है। यदि वह हाथी इस प्रकार का है, तो (साक्षात्) ऐरावत ही है ॥२४॥

२५. अमुगो = अमुक। करआउंटण = सूँड़ को समेटना। रम्मो = रमणीय। चाउंड-काउँए = पार्वती-पति (शिव)। तुट्ठे = सन्तुष्ट होने पर। लब्भइ = प्राप्त होता है। अणिउत्तय-सुरहि = माधवी-लता के पुष्पों की सुगन्धि। जउँण-जलबहुल = यमुना के जल की तरह काला। मय-वट्टो = मद-प्रवाह।

वह (हाथी) अपनी सूँड़ को समेटते समय अत्यन्त रमणीक प्रतीत होता है। उसके मद-प्रवाह की गन्ध माधवीलता के फूलों की सुगन्ध के समान है और यमुना के जल के समान कृष्णवर्ण है। इस प्रकार की, मद-प्रवाह से युक्त रमणीय सूँड़ पार्वती-पति (शिव) के सन्तुष्ट होने पर ही प्राप्त हो सकती है ॥२५॥

२६. अइमुत्तयँ-बिन्दु = माधवीलता पर स्थित जलबिन्दु के समान। करो = सूँड़ को। अइमुत्तय-गोर = माधवीलता के समान गौरवर्ण। दन्तओ = दाँतोंवाला। एस = यह। सविमो =

कल्पना करता हूँ। खु = निश्चयपूर्वक। साव-चविओ = शाप से भ्रष्ट। तिअस-गयवरो = देवताओं का श्रेष्ठ हाथी—ऐरावत। महि-अलम्मि = पृथिवीतल पर।

जिसकी सूँड़ पर माधवीलता पर स्थित जलविन्दुओं के समान मोती स्थित हैं और जिसके दाँत माधवीलता (के पुष्प) के समान गौरवर्ण हैं। (इस प्रकार के हाथी को देखकर) हम कल्पना करते हैं कि किसी (मुनि) के शाप से भ्रष्ट होकर ही यह देवहस्ती (ऐरावत) इस पृथिवीतल पर (आया) है ॥२६॥

२७. **अच्छ = स्वच्छ। कय-कण्ण-चिउओ = केश, कान और चिबुक। महु-पिगल-नयणओ = मधु के समान पीली आँखें। मयक-नहो – चन्द्रमा के समान नख (चन्द्रनख)। पियइ = पीता है। लायण्णं = लावण्य को। इमा = यह (हाथी)। अखुज्ज-कुंभो = उन्नत गण्डस्थलवाला। पर-गयाण = अन्य हाथियों के।**

जिस (हाथी) के केश, कान और चिवुक (ठुड्डी) स्वच्छ (सुन्दर) हैं, आँखें मधु के समान पीली हैं, नाखून चन्द्रमा के समान निर्मल हैं तथा दोनों गण्डस्थल उन्नत हैं, इस प्रकार यह हाथी ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानों अन्य हाथियों के लावण्य को ही पी रहा हो (अर्थात्, वह लावण्य में सर्वश्रेष्ठ है) ॥२७॥

२८. **खप्पर = खपड़ा, घड़े के टुकड़े। खीलय = कील। कुज्जय-कुसुम-समा = शतपत्रिका-वृक्ष के फूलों के समान। सेल-खंभ = पत्थर का खम्भा। रुंधिअ-खासिअ-छिक्कं = खाँसी और छींक को रोक लेना। पिक्खिज्जइ = देखा जाता है। मयगलो = मदोन्मत्त।**

जिस (हाथी) के लिए पत्थर के स्तम्भ, वड़े-वड़े वृक्ष एवं शतपत्रिका-वृक्ष (क्रमशः) घड़े के ठीकरे, कील (काँटी) एवं पुष्पों के समान हैं (अर्थात्, वह हाथी शिला-स्तम्भों और वृक्ष आदि को वड़ी आसानी से

उखाड़ फेंकता है)। वह (हाथी) ऐसा मदोन्मत्त था कि उसे देखने-वालों की भय से खाँसी और छींक रुक जाती थी ।।२८।।

२९. मरगय=मरकत (मणि)। गेंदुअ=गेंद । सरिस=समान। अलि-गुच्छ=भ्रमर-समूह। गंडे=गण्डस्थल को। इह=यहाँ (उसपर)। आरूढो=सवार, बैठा हुआ। जयइ=जीत लेता है। चिलाएव्व=भीलों के समान। परे=शत्रुओं को। सिरिकंठ=महादेव। किराय=किरात, भील। वीरे वि=वीरों के समान।

जिस (हाथी) के गण्डस्थल पर मरकत-मणि के गेंद के समान भ्रमरों का झुण्ड (स्थित) है, उसपर बैठा हुआ राजा कुमारपाल महादेव (शंकर) के समान प्रतीत होता है। जिस प्रकार शंकर ने भील-वीरों को जीत लिया था, उसी प्रकार राजा कुमारपाल भी अपने (भीलों के समान ही) शत्रुओं को जीत लेता है ।।२९।।

३०. जिअ=जीत लेना। घण-सीभर=मेघ के जलबिन्दु। गंगा सीहर=गंगा के जलबिन्दु। चंदिम=चन्द्रमा की चाँदनी। सुसीअ=सुशीतल। सीअरओ=मद-बिन्दुओंवाला। फलिहामल=स्फटिक के समान निर्मल। वीस-नहो=बीस नखवाला। निहसप्पह=कसौटी पर खींची गई रेखा की प्रभा के समान (स्वर्णाभ)। चिहुरओ=केशयुक्त।

बादल की बूंदों एवं गंगा की जलबिन्दुओं की शोभा को जीत लेने-वाला वह हाथी चन्द्रमा की चाँदनी के समान सुशीतल मदबिन्दुओं से सिक्त था, और फिर स्फटिक के समान निर्मल बीस नखोंवाला वह कसौटी पर खींची हुई (स्वर्णिम) रेखा की प्रभा के समान (सुन्दर) केशों से युक्त था ।।३०।।

३१. पिहु-जहणो सुपुष्ट जाघोंवाला। साहुमुहो=सुन्दर मुख-वाला। सरिसव-खल=सरसों की खली के समान वर्णवाला।

कडुअ-सलिलओ = तीक्ष्ण गन्धयुक्त मदजलवाला। अथिरो = अस्थिर। निव-जोग्गो = राजा के योग्य। पत्तो = प्राप्त हुआ। चोत्थि मयावत्थं = तेरह वर्ष की उम्रवाला अथवा चौथी मदावस्था को।

सुपुष्ट जाँघोंवाला, सुन्दर (सौम्य) मुखवाला, सरसों की खली के समान वर्णवाला, तीक्ष्ण गन्धयुक्त मदजलवाला, निरन्तर सूँड़ एवं कान हिलाते रहने के कारण अस्थिर तथा मद-प्रवाह के कारण चतुर्थावस्था (अर्थात्, तेरह वर्ष की उम्र) को प्राप्त वह हाथी राजा की सवारी के योग्य था ॥३१॥

३२. निव-धम्म-रओ = राजधर्म में रत। नभम्मि = आकाश में। पाउस = वर्षाऋतु। घणोव्व = मेघ के समान। पिधमिंदो = पार्थिव इन्द्र। अपिहं = अपृथक्। आसणाओ = आसन से। असंकलं = साँकल से नहीं बँधा। समारूढो = अच्छी तरह आरूढ़।

तदनन्तर, (सज्जन के पालन तथा दुष्टों के दलनरूप) राजधर्म में संलग्न वह राजा कुमारपाल उस हाथी पर साँकलों से बिना बँधे आसन पर उसी प्रकार बैठा, जिस प्रकार ऐरावत हाथी पर इन्द्र। वह राजा उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों आकाश में वर्षा ऋतु का मेघ ही हो ॥३२॥

३३. पुन्नाग-दामवंतो = सुरपर्णिका नाम की लता के फूलों की माला से युक्त। पुलोइओ = पुलकित होकर। भामिणीही पउरीहिं = नगर-निवासिनी महिलाओं द्वारा। छालंकदेव-तेओ = अग्निदेव के समान तेजवाला। सुहओ = सुभग (सुन्दर)। रइसूहवो = रतिसुभग (कामदेव के समान)।

सुरपर्णिका नाम की लता के फूलों की माला से युक्त, शत्रुओं के लिए अग्निदेव के समान तेजवाला, सभी के लिए प्रिय एवं कामदेव के समान सौन्दर्यशाली वह राजा कुमारपाल नगर-निवासिनी महिलाओं द्वारा उत्कण्ठापूर्वक देखा गया ॥३३॥

३४. इंदो = इन्द्र। दुहओ = दुर्भग (असुन्दर), कुरूप। चंदो = चन्द्रमा। दूहवो = दुर्भग (कुरूप)। आसि = था। खेअरवहूणं = देवताओं की वधुओं को। णं = मानों। तस्सि = उस। दिट्ठे = दर्शन करने पर। तइआ = उस समय। मणि-खसि-आहरण = मणियों से खचित आभूषण। खइअंगे = विभूषित शरीरवाले।

मणिखचित आभरणों से विभूषित शरीरवाले राजा कुमारपाल के दर्शन करने पर देववधुओं को उस (कुमारपाल) के सम्मुख देवताओं के राजा इन्द्र और चन्द्रमा दोनों ही कुरूप लगे ॥३४॥

३५. वेस-पिसाओ = वेश से जीर्ण, विवर्ण एवं विकृत पिशाच के समान। मुत्ती-पिसल्लाओ = आकृति से साक्षात् पिशाच की मूर्त्ति के समान विकराल। झडिल्लो = जिसके सारे शरीर पर बाल उगे हैं। अजडिलो = केशरहित सिर। खट्टंग-घंट = त्रिशूल और घण्टा। भूसो = विभूषित। निवारिओ = निवारित, रोक दिया गया। पुरो = (राजा के) आगे। न = नहीं। अटइ = घूम सके।

(राजा कुमारपाल के राज्य में) वेश से (जीर्ण, विवर्ण एवं विकृत) पिशाच जैसे (भयानक) दिखाई पड़नेवाले, आकृति से साक्षात् (भयंकर) पिशाच के समान दिखाई देनेवाले, रोमवहुल शरीरवाले, मुण्डित सिरवाले (कापालिक आदि), त्रिशूल एवं घण्टा से भूषित, अर्थात् मृतक-कपाल, घण्टा आदि से युक्त ईश्वरवेश (जटा)-धारियों का, दुःशकुन (अपशकुन) के

निवारण की दृष्टि से घूमना-फिरना निषिद्ध कर दिया गया था, ताकि यात्रा के समय वे राजा के सामने न दिखाई पड़ें ॥३५॥

३६. केढव-सयढारि = कैटभ और शकट नाम के राक्षस। सढाल = सटावाला (केशों के गुच्छोंवाला = नृसिंह)। विक्कमो = विक्रमवाला। फलिह् = स्फटिक। विमल-नेवच्छो = निर्मल वेश-भूषावाला। चविला = चपेट। फ़ालिअ = फाड़ डाला। कुंभो = गण्डस्थल। नहं = आकाश को। चविडाइ = चपेट से। फाडंतो = फाड़ता हुआ।

कैटभ एवं शकट नामक राक्षसों के महान् शत्रु, नरसिंह (भगवान्) के समान पराक्रमी, स्फटिक के समान निर्मल वेश-भूषाधारी तथा (अपनी वलशाली भुजा के एक ही) प्रहार से (गजराज के) गण्डस्थल को विदीर्ण कर देनेवाला वह (राजा कुमारपाल) ऐसा प्रतीत होता था, मानों अपनी चपेट (प्रहार) से आकाश को ही फाड़ रहा हो। ऐसा वह राजा कुमारपाल (अपने कुमार-विहार में पहुँचा) ॥३६॥

३७. अंकोल्ल-तेल्ला = अंकोठ (अखरोट) के फलों का तेल। णिद्धो = स्निग्ध। असढो = शठता-रहित। पिहडो = पात्र, अर्थात् ज्ञाता, (ज्ञान का) पिटारा। कलाण सयलाण = समस्त कलाओं का। लहु-जढर = लघुताप्राप्त पेटवालों के लिए। पिढर = भूख मिटाने के लिए उपाय-रूप। पडियार = प्रतिकार (भोजन-रूप)। पाउणत्ताण = भोजन के लिए इधर-उधर घूमने की पीड़ा से त्राण देनेवाला। कय-कोलो = क्रीडापूर्वक सम्पन्न कर दी।

अंकोठ (अखरोट) के तेल के समान स्निग्ध (चिकने) शरीरवाला, शठता (एवं धूर्त्तता) से रहित, समस्त कलाओं का पिटारा (सुपात्र), भूख के कारण धँसे हुए उदरवालों की भूख को दूर करने के लिए भोजन का (सफल) उपाय कर, उन्हें इधर-उधर भटकने की पीडा से क्रीडामात्र

(अर्थात्, अनायास या खेल-खेल) में ही त्राण दिलानेवाला वह राजा कुमारपाल (कुमार-विहार में पहुँचा) ॥३७॥

३८. दढ-खन्ध=दृढ स्कन्ध। हार-नाडि=हार के समान पड़े हुए रस्से को। पेल्लंतो=प्रेरणा देता हुआ। निबिड-कच्छ=सघन काँख (कक्ष)। नालि=बड़ी भारी रस्सी। इभं=हाथी को। उव्वेलु=ऊँचा उठाये रखना। अचुच्छंकुस=अतुच्छ अंकुश वाले (समर्थ)। अछुच्छ-वेणूहि=अतुच्छ वेणु (आदि राजा)। आवरिओ=चारों ओर से घिरा हुआ।

जिस (गजराज) के दृढ स्कन्धों (कन्धों) पर हार के समान रस्सा डाला गया है तथा जिसके सघन (निविड) कक्ष के मध्य रस्सी डाली गई है, ऐसे उस गजराज को प्रेरित करनेवाले (अपने-अपने वंश के झण्डे की तरह) उन्नत वेणुदण्डों तथा उत्तम अंकुश धारण किये हुए श्रेष्ठ वेणु आदि (समर्थ) राजाओं द्वारा (सेवा-हेतु) परिवृत (चारों ओर से घिरा हुआ) वह राजा कुमारपाल (कुमार-विहार में पहुँचा) ॥३८॥

३९. अणतुच्छ=महान्। टयर=तगर (सुगन्धित द्रव्य)। कप्पूर-धूव=कर्पूर और धूप। महामहिअ=सुगन्धित, अतएव महान्। टसर=रेशमी। सूइ=पवित्र। वत्थो=वस्त्रवाला। कुमर-विहारे=कुमारपाल द्वारा निर्मित विहार (मन्दिर) में। पत्तो=पहुँचा। टूवर=जिसके दाढ़ी-मूंछ न हों। पडिहार=प्रतिहार। दिन्नकरो=हाथ द्वारा संकेतित।

सर्वश्रेष्ठ तगर (नामक विशेष सुगन्धित द्रव्य), कर्पूर एवं धूप के सुगन्धियुक्त धूम से पवित्र त्रसर (टसर) के रेशों (तागों) से निर्मित वस्त्रों को धारण किये हुए वह राजा कुमारपाल, दाढ़ी-मूंछ से रहित प्रतिहारियों के हाथों द्वारा किये गये संकेतों (के आधार) पर कुमार-विहार में (पार्श्वनाथ-चैत्य में दर्शनार्थ) पहुँचा ॥३९॥

४०. सुपइट्ठं = शास्त्रोक्त विधि से सुप्रतिष्ठित। सुपडायं = सुन्दर पताकावाला। वेडिस-दल = बेंत का समूह। नील-भित्ति = नीलमणि से निर्मित दीवारें। गब्भिणयं = तलभाग, ऊर्ध्व शिखरभाग। अणिउत्तय = अतिमुक्तक। फुल्ल-हरं = पुष्पगृह। बालाण = बालकों का। रुण्ण-अवहरणं = रोना रोक देनेवाला।

वह कुमार-विहार (अर्थात्, पार्श्वनाथ-चैत्य) शास्त्रोक्त विधि से सुप्रतिष्ठित तथा वेतस-दल के समान सुन्दर पताकाओं से युक्त था, जिसकी भित्तियाँ एवं गर्भगृह तथा निम्न, मध्य एवं शिखरभाग नीलमणियों से निर्मित थे, उस (चैत्य) में (पूजा-हेतु) लाये गये सुन्दर पुष्पों को सुरक्षित रखने के लिए पुष्पगृह (कक्ष) भी निर्मित था तथा उस चैत्य की भित्तियों पर इतने सुन्दर हँसते हुए बालकों के चित्र अंकित थे कि उन्हें देखकर बालक रोना भूल जाते थे ॥४०॥

४१. बाहत्तरि-कल = बहत्तर कलाएँ। सालाहण-सम = राजा शालिवाहन अथवा सातवाहन (हाल) के समान। जणं = श्रावकजनों को। अलसिकुसुम = अतसीपुष्प। कय-सोहं = शोभा करनेवाला। पलिल-सिर = सघन बालवाले सिर अथवा मलिन बालवाले सिर। पलिअ = सफेद। पीवल = पीत वर्ण के। करण = करने के लिए। घुसिणुमीस = कुंकुम-केशर से मिला। ण्हवण-जलं = नहाने का पानी, स्नानजल।

बहत्तर कलाओं में राजा शालिवाहन (सातवाहन : हाल) के समान तथा शुभ्र अथवा मलिन (मैले अथवा कृष्ण वर्ण के) सिरवाले श्रावकों के केश जहाँ (जिस कुमार-विहार में स्थित) अतसी (तीसी) के पुष्पों से सुशोभित तथा कुंकुम-केशर से मिश्रित जल में स्नान करने के कारण पीत (स्वर्ण) वर्णवाले हो जाते हैं ॥४१॥

४२. पीअल-धाउ = पीली धातु (स्वर्ण)। विणिम्मिअ = विनिर्मित

विहत्थि-पम = बारह अंगुल (बुन्देली बित्ता)-प्रमाण। माहुलिंग = मातुलिंग। आहरण = आभरण (बिजौरा नींबू की आकृति-वाला आभूषण)। भरह-जिण-भवण-सरिसं = भरत-जिन के भवन-सदृश। मंगल-वसहिँ = मंगल का निवास (स्थान)। सिरी-वसइ = लक्ष्मी अथवा शोभा का स्थान (वसति)।

(ऋषभपुत्र) भरत (चक्रवर्त्ती) के जिन-भवन के सदृश ही राजा कुमारपाल का पीत धातु (स्वर्ण) से निर्मित एक वित्ता (वारह अंगुल)-प्रमाण, मातुलिग (एक प्रकार का वड़ा विजौरा नींबू) की आकृतिवाले धूपदान-रूपी आभरण से युक्त वह कुमार-विहार सभी के लिए कल्याण एवं लक्ष्मी का आवास-स्थल था। ॥४२॥

४३. अध = अथ। काहल = पाप से डरनेवाले। भव्व-जणं = भव्य जन। सिढिलिअ = शिथिल कर दिया है। कलि-कालं = कलियुग को। असढिलाणंदं = अगाध आनन्द। नयरस्स = नगर का। मेढिभूयं = नाभिरूप (केन्द्ररूप)। पढमं = प्रथम। तित्थं = तीर्थं। पुढवीए = पृथिवी पर।

उस नगर का नाभिरूप (केन्द्ररूप) और पृथिवी पर प्रथम तीर्थ के समान वह (कुमार-विहार) अगाध आनन्द देनेवाला था। पाप से डरने-वाले वहाँ के भव्य जनों ने (अपनी निरन्तर धर्मसाधना द्वारा) कलियुग को भी शिथिल कर दिया था ॥४३॥

४४. पुहवी = पृथिवी। निसीढ = निशीथ (अर्द्ध रात्रि)। तम-भर = अन्धकार के भार (के लिए)। निसीहिणीनाह = रात्रिपति (चन्द्रमा)। सरिस = समान। जिण-बिंबं = जिन-प्रतिमा। खण्डिअ = नष्ट कर दिया है। डंभिअ = दम्भी पुरुष के। दंभं = दम्भ (अहंकार) को। उद्दंड = उत्तुंग, ऊँचा। सुवण्णमय-डंडं = स्वर्णदण्ड।

अर्द्धरात्रि में पृथिवी के निबिड अन्धकार को जिस प्रकार चन्द्रमा नष्ट करता है, ठीक उसी प्रकार जनता के मिथ्यात्व-रूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए (उस कुमार-विहार में) जिनेश्वर की प्रतिमा (स्थित) है। उस (विहार) का उत्तुंग विशाल स्वर्णदण्ड दम्भी पुरुषों के दम्भ को नष्ट करनेवाला है ॥४४॥

४५. डरिआणं=डरे हुए प्राणियों के। दर-हरणं=डर दूर करनेवाला। डड्ढागरु=जलाये हुए अगरु। दड्ढ-धूव=जलाई हुई धूप। सुहगंधं=शुभ गन्ध। अहिडसण=सर्प के दाँतों से। डट्ठु=काटा हुआ। सरणं=शरण में। दसण=दाँत (हाथी-दाँत)। कवाडंसु=किवाड़ों की किरणों से। दट्ठ-तमं=अन्धकार नष्ट हो जाता है।

(वह कुमार-विहार) जलाये हुए अगरु-धूप की शुभ गन्ध से युक्त है। वह डरे हुए प्राणियों का डर दूर करनेवाला है। सर्प के दाँतों द्वारा काटा हुआ भी उसकी शरण में (जाने पर बच) जाता है। हाथी के दाँतों से निर्मित किवाड़ों की किरणों से जहाँ अन्धकार भी नष्ट हो जाता है ॥४५॥

४६. डाहत्त-दाह-हरणं=संसार के ताप से सन्तप्त जीवों का सन्ताप हरण करनेवाला। कय-डोहलयाण=(दोहल) आकांक्षा-युक्त भावनावालों की। पुन्न-दोहलयं=आकांक्षा को पूर्ण करने वाला। कडण-मइ=हिंसामयी बुद्धिवालों की। चत्त-कदणं=कुबुद्धि दूर करनेवाला। डब्भंकुर=दर्भांकुर। नील=नील वर्णवाली।

वह (कुमार-विहार) विभिन्न सांसारिक सन्तापों से दुःखी जीवों का सन्ताप दूर करनेवाला है, वह अभिलाषी जनों की मनःकामना पूर्ण

करनेवाला है और वह हिंसामयी बुद्धिवालों की कुबुद्धि दूर कर देनेवाला है। उस कुमार-विहार के आँगन में दर्भ (घास) के अंकुर के समान नीलवर्णवाली नीलमणियाँ जड़ी हुई हैं ॥४६॥

४७. दब्भग्ग = दर्भांकुर का अग्रभाग। मई = बुद्धिवाला। दर-डोलिर-सीसं = डर के कारण काँपता हुआ सिर। अदोलिरेण हिअएण = निश्चल हृदय से। दूरमहरं = दूर से ही अधर को। डसंते = काटते हुए। डहमाणो = सन्ताप उत्पन्न करता हुआ। मिच्छ-दिट्ठि = मिथ्यादृष्टि। जणे = मनुष्यों को।

दर्भांकुर के समान तीक्ष्ण बुद्धिवाला वह राजा कुमारपाल (जिन-प्रतिमा की रमणीयता को दूर से ही देखकर) पापभीरु व्यक्ति की तरह अपने सिर को हिलाता हुआ, आश्चर्य और आनन्द से निश्चल हृदय के साथ, दूर से ही अपने अधरों (होठों) को (दाँतों से) काटनेवाले मिथ्यात्वी जनों के मन में सन्ताप उत्पन्न करता हुआ (उस कुमार-विहार में प्रविष्ट हुआ) ॥४७॥

४८. थुणिरो = स्तुति करनेवाला। देवं = देव की। बारह-रवि-तेअं = बारह सूर्यों के समान तेजयुक्त। भत्ति = भक्ति। गग्गर = गद्गद। गिराए = वाणी से। धम्म-करि = धर्मरूप हाथी के लिए। करलि-हुओ = पताका (ध्वजा)-रूप। कयलि-मिउ = केले के समान मृदु (सुकोमल)। कोह-अपलित्तो - क्रोध से अप्रदीप्त (प्रशान्त), अर्थात् क्रोधरहित।

वह राजा कुमारपाल भक्तिविभोर होकर गद्गद वाणी में बारह सूर्यों के समान तेजस्वी वीतराग प्रभु की इस प्रकार स्तुति करने लगा : "हे देव, आप धर्म-रूपी हाथी के लिए पताका के समान (अर्थात् धर्मध्वज) तथा केले के समान सुकोमल और क्रोध से रहित हैं ॥४८॥

४९. दोहल = मनःकामना । दुउणिअ = द्विगुणित । धाराकयंब = वर्षा ऋतु में फूलनेवाले कदम्बवृक्ष के समान । धूलीकलंब = ग्रीष्म ऋतु में फूलनेवाले कदम्बवृक्ष के समान । कण्टइओ = कण्टकित । घिप्पिर-सुवण्ण = चमकनेवाले स्वर्ण के समान । दिप्पिर-तणु = चमकते हुए शरीर की । कंति = कान्ति (शोभा) । कवट्टि-अन्न-पहो = दूसरी अन्य प्रभाओं को उखाड़ (कबाड़) दिया—कान्तिहीन कर दिया ।

लोगों की मनःकामनाओं की पूर्त्ति करते रहने के कारण वह (राजा कुमारपाल) द्विगुणित वृद्धि (समृद्धि) को प्राप्त हो गया । जिस प्रकार वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतु में फूलनेवाले कदम्ववृक्ष (अपनी विशेष ऋतुओं के आने पर) कण्टकित, अर्थात् रोमांचित हो उठते हैं, उसी प्रकार वह राजा भी (जिन-प्रतिमा के दूर से ही दर्शन करके) पुलकित हो उठा और (उस समय) उसके स्वर्णाभ शरीर की कान्ति ने अन्य प्रभाओं को कान्तिहीन कर दिया ॥४९॥

५०. चइउं = छोड़ करके । निव-काउहाइँ = (छत्र, खड्ग, वाहन, मुकुट और चँवर-रूप) राजचिह्न । निसढाइ = निषध आदि । निवाणं = राजाओं के लिए । धम्म-सिक्खाओ = धर्मोपदेश । ओसहं = औषधि को । ओसढिओ = औषधि का जानने-वाला । दिंतो = देता हुआ । निसीहिअं = पापकर्म का परित्याग । काउं = करके ।

(राजा कुमारपाल) अपने सभी राजचिह्नों (छत्र, खड्ग, वाहन, मुकुट एवं चँवर) को (कुमार-विहार के वाहर ही) छोड़कर निषध आदि राजाओं को ठीक उसी प्रकार धर्म की शिक्षा देने लगा, जिस प्रकार औषधि का ज्ञाता औषधि प्रदान करता है । (इसके पश्चात्) वह (राजा)

पापकारी क्रियाओं का त्याग करके (कुमार-विहार की मूल वेदी के कक्ष में प्रविष्ट हुआ) ॥५०॥

५१. निअ-नामंकिअ = अपने नाम से अंकित (कुमार-विहार)। णिअ-कित्तणयं = अपनी कीर्त्ति के लिए निर्मित। अनिलाव्व = हवा के समान। अतुल-थामेण = अत्यधिक बलशाली होने के कारण। पज्जलिआनल-तेओ = प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजोदीप्त। भत्तीइ = भक्ति के साथ। तओ = इसके बाद। पइट्ठो = प्रविष्ट हुआ।

वायु के सदृश अतुलित वलशाली एवं प्रज्ज्वलित अग्नि के समान महा तेजस्वी उस राजा कुमारपाल ने अपनी कीर्त्ति के लिए अपने नाम से ही वनवाये हुए उस कुमार-विहार (के पार्श्वनाथ-चैत्य) में भक्तिपूर्वक प्रवेश किया ॥५१॥

५२. लिंबासय = मलिन आशयवाले (कपटी)। लिंबगिरा = कटु वाणीवाले। कलि-ण्हाविअ = कलियुग-रूपी नाई। पाव-नाविआदरिसा = पापरूप नाई के जैसे मलिन आदर्श (दर्पण)-वाले। धम्म-रिउणो = धर्म से शत्रुता रखनेवाले। दिट्ठे = दर्शन करने पर। धम्मोम्मुहा = धर्म के प्रति उन्मुख, अर्थात् धर्मानुरागी। हूया = हो गये।

नीम के समान मलिन, अर्थात् क्रूर आशयवाले, नीम के समान कटु वाणी वोलनेवाले, कलि के समान कुत्सित एवं पापकार्यों में निपुण नापित जैसे मलिन आदर्शवाले तथा धर्म से शत्रुता रखनेवाले धर्म-शत्रु भी (धार्मिक वृत्ति देखकर) उस राजा कुमारपाल के सम्मुख धर्मोन्मुख हो गये ॥५२॥

५३. फणस = पनसवृक्ष। फालिहद्दय = देवदारुवृक्ष। दीहर = दीर्घ। भुअ-फलिह = भुजा-रूपी परिघ (मूसल या अर्गला)।

जोडिअ = जोड़ करके। णडालो = ललाट (माथे) पर। अफरुस = विनययुक्त। गिराइ = वाणी से। फालिअ = नष्ट कर दिया। मोहो = मोहनीय कर्म। इअ = इस प्रकार। जिण-थुइमकासि = जिन-स्तुति की।

कल्याणकारी पनस एवं देवदारुवृक्ष के समान अपनी लम्बी भुजाओं-रूपी परिघ को अपने माथे पर जोड़कर उस राजा कुमारपाल ने विनम्र वाणी में मोहनीय कर्म को नष्ट करनेवाली जिनेश्वर की स्तुति इस प्रकार की— ॥५३॥

५४. फलिहा-जलं = खाई का जल। बहुत्तंबुजेहि = अत्यधिक कमलों से। जह = जैसे। वणं = जंगल। नीमेहि = कदम्बवृक्षों से। जग-सिरि = जगत की शोभा-रूप। नीवावेडय कदम्बपुष्प की माला से वेष्टित। सहइ = सुशोभित होता है। महइ = पृथिवी। तह = तथा। तुह = आपके। पएहि = चरणों से।

"जिस प्रकार खाई का जल अनेक कमलों से एवं जंगल कदम्ब-वृक्षों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार हे जगत् के शोभारूप देव, आपके चरण कदम्ब-माला से सुशोभित हैं और आपके चरण-कमलों से यह पृथिवी सुशोभित है" ॥५४॥

५५. तुह = आपकी। कय = कृपा। कुसुमामेला = फूलों को माला। पणट्ठ = नष्ट हो गये हैं। पारद्धि = पारधी; शिकारी। पमुह = प्रमुख। पावमला = पाप से मलिन। मुत्ताहल-विमल = मोती के समान निर्मल (निष्कलंक)। हवंति = हो जाते हैं। रेभव्व = ऊर्ध्वरेफ के समान (अर्थात्, रेफ के समान; जैसे कर्म, धर्म आदि)। मुद्धन्ना = मूर्द्धन्य (मोक्षगामी)।

"हे भगवन्, आपकी कृपा-रूपी पुष्पमाला मनुष्यों के, शिकारी के समान घातक बड़े पापमल को भी नष्ट कर उन्हें मुक्ताफल के समान निर्मल (निष्कलंक) बना देती है और वे ऊर्ध्वरेफ समान मूर्द्धन्य (मोक्षगामी) हो जाते हैं" ॥५५॥

५६. सहलो = सफल। जम्मो = जन्म। सभलं = सफल। जीविअं = जीवन। ताण = उन्हीं का। देव = जिनेन्द्र देव। फणिचिन्ध = सर्पचिह्नवाले (पार्श्वप्रभु)। चंपयसबलेहिँ = चम्पक के विविध वर्णवाले पुष्प। भिसिण-कुसुमेहिँ = कमल-पुष्पों से। अच्चंति = अर्चना (पूजा) करते हैं।

"सर्पचिह्नवाले हे पार्श्वप्रभु, जो भी व्यक्ति चम्पक के विविध वर्णवाले पुष्पों एवं कमल-पुष्पों से आपकी अर्चना (पूजा) करते हैं, उन्हीं का जन्म एवं जीवन सफल है" ॥५६॥

५७. असिर-कमन्धे = सिर-रहित धड़वाले। अकयन्ध-सिरे = धड़-रहित सिरवाले। समरम्मि = भयंकर युद्धभूमि में। तुज्झ = तुम्हारे। झाणेण = ध्यान से। केढव-रिउणोव्व = कैटभ नामक राक्षस के शत्रु (विष्णु) के समान। निवा = योद्धा राजा। विसढाविसमं = विषमता एवं अविषमता को। जाणंति = जानते—गिनती करते हैं।

"सिर-रहित धड़वाले और धड़-रहित सिरवाले (होकर भी परस्पर जूझते हुए वीर योद्धा राजा, भयानक युद्धभूमि में भी, हे भगवन्! तुम्हारा ध्यान कर लेनेमात्र से ही (शक्ति संचित कर) कैटभ नामक राक्षस के शत्रु (विष्णु) के समान युद्ध की विषमता या अविषमता की गिनती नहीं करते" ॥५७॥

५८. वम्मह-पिआ = मन्मथ के पिता (विष्णु)। अहिवन्नू = अभिमन्यु। अहिवन्नु-पिआ = अभिमन्यु के पिता, अर्थात् अर्जुन। भसल-

साम=भ्रमर के समान श्याम। पय-पंकएसु=पद-पंकजों में। भमराइअं=भ्रमर आदि। अहरिओ=तिरस्कृत। जेण= जिसके द्वारा, जिसने, जो। तेण=वह, उसने, उसके द्वारा।

"हे भगवन्, जो कोई भी भ्रमर के समान श्यामल तुम्हारे चरणों में अपने-आपको भ्रमर के समान ही न्यौछावर कर देता है, वह मन्मथ के पिता (विष्णु), अभिमन्यु और अभिमन्यु के पिता अर्जुन को भी (वीरता और सबलता में) तिरस्कृत कर देता है" ॥५८॥

५९. पहु=प्रभु। तुम्हकेर=तुम्हारे। अहखाय-संजमे = यथाख्यात नामक चरित्र-संयम में। सोवओग=पूर्ण या उपयोग में लगे हुए। साहूण=साधुओं के। समो=बराबरी। अहजाओ= यथाजात (नग्न रहते हुए भी)। तवकिसंग=(वर्षा-आतप-शीत आदि) तपस्याओं के परीषहों को सहन करने के कारण कृश शरीरवाले। लट्ठी=लाठी-लकड़ी। हु=निश्चय से। कुदिट्ठी= कुदृष्टि (मिथ्या दृष्टि) वाले।

"हे प्रभो, कुदृष्टि (मिथ्या दृष्टिवाले जमदग्नि आदि) साधु, जो यथाजात (अर्थात्, नग्न) रहते हुए तथा विभिन्न प्रकार की वर्षा, शीत, आतप आदि तपस्याओं के परीषहों को सहन करने के कारण कृशकाय होकर लकड़ी के समान हो गये हैं, निश्चय ही आपके (द्वारा वर्णित) यथाख्यात चारित्र के उपयोग (पालन) में लगे हुए साधुओं की बराबरी नहीं कर सकते" ॥५९॥

६०. करणिज्जाकरणीअं=करणीय (कर्त्तव्य) और अकरणीय (अकर्त्तव्य) को। पेआपिज्जं=प्रिय और अप्रिय को। मुणंति=मानते (जानते) हैं। जे=जो। दोज-दुइज्जा= अद्वितीय दोषयुक्त व्यक्ति। गुण-बीआ=अद्वितीय सद्गुणी व्यक्ति। हुंति=हो जाते हैं। तइँ=तुम्हारे, आपके। दिट्ठे= दर्शन करने पर।

"हे प्रभो, जो करणीय (कर्त्तव्य) और अकरणीय (अकर्त्तव्य) को, प्रिय (हितकारी) और अप्रिय (अहितकारी) को भी नहीं जानते, ऐसे अद्वितीय दोषयुक्त व्यक्ति भी आपकी कृपादृष्टि-मात्र से ही अद्वितीय सद्‌गुणी हो जाते हैं" ॥६०॥

६१. वेकक्ख=दोनों काँखों। उत्तरीआ=ऊपर ओढ़ा जानेवाला वस्त्र (उत्तरीय)। धवल=सफेद। दुगूलोत्तरिज्ज=कमर में लपेटा जानेवाला वस्त्र। पिहिअ=ढका हुआ। मुहा=मुख को। कयण्हवणा=अभिषेक किये हुए। घण=सघन। छाय-छत्त=छायावाला छत्र। छाहीओ=छाया (का अनुभव)। माणंति=मानते (जानते) हैं।

"हे प्रभो, जो अपनी दोनों काँखों (वक्षःस्थल की बगलों) में धवल उत्तरीय (चादर) लपेटकर तथा कमर में एक धवल चादर बाँधकर और मुख को (सफेद वस्त्र से) ढककर आपका अभिषेक एवं पूजन करते हैं, वे आपके सघन छायावाले शासन-छत्र की छाया में सुख-शान्ति का अनुभव करते हैं ॥६१॥

६२. सच्छाओ=सुन्दर आभावाला। कइवाह=कतिपय। परिअणो=परिजन। कइअवं=कतिपय। थुइ=स्तुति। काउं=करने के लिए। आइ-किडिव्व=वराह-अवतार के समान। अभेडो=शूरवीर। जिण-ण्हवणे=जिनाभिषेक में। पयट्टो=प्रवृत्त हुआ।

इस प्रकार, सुन्दर कान्तिवाला तथा वराहावतार के समान शूरवीर वह राजा कुमारपाल अपने कतिपय परिजनों के साथ जिनाभिषेक के बाद कतिपय (आवश्यक) स्तुति करने-हेतु प्रवृत्त हुआ ॥६२॥

६३. पल्लाणिअ=पलाण (काठी) से सजाये गये। अपडायाणिअ=काठी से नहीं सजाये गये। हयमाएहि=घोड़ों पर आये हुए। अवर-राएहि=अन्यान्य राजाओं द्वारा। कणवीरच्चिय=

कनेर के फूलों से पूजित। कलसो=कलश। हलिद्द-गोरो= हल्दी के समान गौर वर्णवाला। किर=निश्चयपूर्वक। दिट्ठो=देखा गया।

पलानों (काठी आदि) से सुसज्जित एवं पलानों से रहित घोड़ों पर आये हुए अन्यान्य राजाओं ने कनेर के पुष्पों से पूजित कलश और हल्दी के समान गौरवर्ण (अर्थात्, स्वर्णाभ) उस राजा कुमारपाल को उत्कण्ठा-पूर्वक देखा ॥६३॥

६४. जिणम्मि=जिनमन्दिर में। दुवालस-रवि-तेए=बारह सूर्यों के समान तेजवाला। मुहल=मुखर, वाचाल। घंटा=घण्ट। थोर=स्थूल। रवं=आवाज। णंगलि=बलभद्र। लंगलि-भायर=बलभद्र के भाई, अर्थात् कृष्ण। सरिस=समान। पलोट्टिआ=खाली किये हुए। कलसा=अनेक कलश।

बलभद्र एवं कृष्ण, इन दोनों भ्राताओं के समान सुन्दर उस राजा कुमारपाल द्वारा बारह सूर्यों के समान तेजस्वी उस जिन-प्रतिमा के सम्मुख की गई स्तुति-रूप ध्वनि (गम्भीर शब्द) मुखर घण्टों तथा (अभिषेक के बाद रिक्त सोने-चाँदी के) कलशों से उत्पन्न प्रतिध्वनि के रूप में लौटने लगी ॥६४॥

६५. णंगूलि=लम्बी पूँछवाले। णाहलत्तण=म्लेच्छत्व। अपुण-भवत्थं=पुनः उत्पन्न न होने के लिए, वही भव (योनि) पुनः प्राप्त न हो। निवेण=राजा ने। करुणाए=करुणापूर्वक। लंगूलि-लाहला=लम्बी पूँछवाले और म्लेच्छ प्राणी। सित्ता=सींच दिया। जिण-ण्हवण-सलिलेन=जिनाभिषेक के जल से।

लम्बी पूँछवाले तिर्यंचों तथा म्लेच्छों को अगले जन्म में पुनः वही भव (योनि) प्राप्त न हो, इस विचार से उस राजा कुमारपाल ने

करुणापूर्वक उन लम्बी पूँछवाले तिर्यंचों एवं म्लेच्छों को जिनाभिषेक के जल से सिक्त किया ।।६५।।

६६. ससि-खंड = खण्डित चन्द्रमा, अर्थात् अष्टमी का चन्द्रमा। णडालाहि = ललाटवाली। समरीभासाइ = भीलों की भाषा में। दूसिमिण-हरणं = दुःस्वप्नों का हरण करनेवाले। सिविणे = स्वप्न में। दुलहमणुजिणं = जिनेन्द्र को लक्ष्य करके गाया हुआ दुर्लभ। अकारि = प्रारम्भ किया। संगीयं = संगीत को। इत्थीहिँ = स्त्रियों द्वारा।

(अष्टमी के) चन्द्रमा के समान ललाटवाली (सुन्दर) भीलनियों (शवर जाति की महिलाओं) ने शावरी (भील)-भाषा में दुःस्वप्नों का हरण करनेवाला तथा स्वप्न में भी मनुष्यों के लिए दुर्लभ संगीत पार्श्वप्रभु को लक्ष्य कर प्रारम्भ किया ।।६६।।

६७. दढिआ = दृढता से बाँधा गया। सुनीविआहिँ = सुन्दर चित्रित रंग-विरंगे वस्त्रोंवाली। नीमीओ = नीवी। नच्चणीहिँ = नृत्यांगनाओं द्वारा। तक्कालं = तत्क्षण। सविसेस = विशेषताओं से युक्त। सद्द-गीए = शब्द और गीत। सज्जाइ = षड्ज (नासा, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त से उत्पन्न) स्वर। कमोक्कम = आरोह-अवरोह। पयट्टे = प्रवृत्त।

सुन्दर चित्रित रंग-विरंगे वस्त्रों से सुसज्जित नर्त्तकियों ने अपने-अपने नीवी-वन्ध (नाड़े) तत्काल ही कसकर बाँध लिये (जिससे कि नृत्य करने के समय खुल न जायँ)। तत्पश्चात् उन्होंने षड्ज (नासा, कण्ठ, उर, तालु जिह्वा एवं दन्त, इन छह स्थानों से उत्पन्न ऋषभ आदि स्वरों) के आरोह-अवरोह (ह्रस्व एवं दीर्घ) के क्रमानुसार (सार्थक, निर्दोष एवं रम्य) शब्द एवं गीत-विशेष प्रारम्भ कर दिये ।।६७।।

६८. तइया = उस (नृत्य)काल में। वणिअ-सुसाहिँ = वणिग्जनों की पुत्रवधुओं द्वारा। निव-सुण्हा-वल्लाहाओ = राजवधुओं को प्रिय लगनेवाली। दिट्ठा = देखी गई। पाहाण-पुत्तिआहि = पाषण-पुतलियाँ। पासाण-त्थम्भ-लग्गाहिं = पाषाण के स्तम्भों के सहारे खड़ी हुई।

उस नृत्यकाल में (प्रेक्षागृह में) राजवधुओं को भी अत्यन्त प्रिय लगनेवाली नर्त्तकियाँ जव पाषाण-स्तम्भों के सहारे खड़ी हुईं, तव वणिग्जनों की पुत्रवधुओं द्वारा वे (नर्त्तकियाँ) इस प्रकार देखी गईं, मानों पाषाण में उत्कीर्ण पुतलियाँ हों ॥६८॥

६९. वंजिअ = प्रकट किया गया। दह-विह-धाउ = दस प्रकार की धातु (विशेष प्रकार के नृत्य-गान)। जणणी = माता। लासस्स = लास्य (विशेष प्रकार के गेय पदों) का। दह-विहस्स = दस प्रकार के। दिवसे = दिनभर। दिवहावगमे अ = दिन की समाप्ति पर (रात्रिकाल में) भी। सुहयरी = सुखकरी। वाइआ = बजाई गई।

(नाट्यशास्त्र में वर्णित) दस प्रकार की धातुओं (अर्थात्, आलत्तिका—विशेष प्रकार के नृत्य-गान) तथा दस प्रकार के लास्यों (विशेष प्रकार के गेय पदों) को व्यंजित करनेवाली वे नर्त्तकियाँ मानों उनकी आदिजननी ही हों। वहाँ सम्पूर्ण दिन एवं रात्रि में भी सुखदायिनी वीणा वजाई गई ॥६९॥

७०. रंजिअ = प्रमुदित किया। नर-सिंघेन = मनुष्यों में सिंह के समान। वंसिअ-सीहेण = वंशी बजाने में सर्वश्रेष्ठ। वाइओ = बजाई। वंसो = बाँसुरी। दाघत्त = ग्रीष्म की दाह से सन्तप्त। दाह-हरणो = दाह हरण करनेवाला। छुह-घवले = अमृत

के समान निर्मल। जिण-गुणे = जिनेश्वर के गुणों को। गाउं = गाया।

वंशी वजाने में सर्वश्रेष्ठ राजाओं ने वंशी वजाई, जिससे नृसिंह-समान राजा कुमारपाल प्रमुदित हो उठा। उन वंशीवादकों ने ग्रीष्म ऋतु के सन्ताप को दूर करनेवाले अमृत के समान निर्मल जिनगुणों का (वंशी के माध्यम से) गान किया ॥७०॥

७१. छमि-छत्ति-वण्ण गोरो = शमी एवं सप्तच्छद के पुष्पों के समान गौर वर्णवाली। छट्ठी = छठा (अस्त्र)। भल्लि = भाला। पंच-बाणस्स = पाँच बाणों के। मय-छावच्छी = मृगशावक के समान आँखोंवाली। वर-मुहर गायणी = श्रेष्ठ और मुखर होकर गानेवाली। गिण्हिउं = ग्रहण कर। तालं = ताल (कांस्यताल)।

(वंशी-वादन के पश्चात्) शमी एवं सप्तपर्णी वृक्षों के फूलों के समान गौर वर्णवाली, श्रेष्ठ और मुखर होकर गानेवाली तथा मृगशावक के समान आँखोंवाली गायिकाएँ कामदेव के पाँच वाणों के अतिरिक्त छठे अस्त्र के रूप में भाले के समान ताल (काँसे के वने वाद्य) ग्रहण कर (जिन-गुणों का गान करने लगी) ॥७१॥

७२. अमय-छिरा = अमृत की धारा। महुरसरा = मधुर आवाज-वाली। अमय-सिरोवम-सराहि = अमृत की धारा के समान स्वरों द्वारा लय की सहायता से गाये हुए। अणुगमिआ = अनुकरण की जाती हुई। जिणगाणम्मि = जिनेन्द्र के गीतरूप स्तुति में। पयट्टा = प्रवृत्त हुई। गुण-भायण-दाण-भाणं = गुणवान् पुरुषों के लिए दिया जानेवाला दानपात्र। तो = उसके।

तत्पश्चात् अमृत की धारा के समान मधुर स्वरवाली वे गायिकाएँ अमृत की धारा के समान अपने स्वरों द्वारा दूसरों की लय का अनुगमन

करती हुई जिनेन्द्र के गुणों का गान करने के लिए प्रवृत्त हुई। वह गान गुणियों तथा सुपात्रों को दान देने के समान था ॥७२॥

७३. दणु-कुल = राक्षस-कुल । दणुअ-कुलाराइ = राक्षस-कुल के शत्रु, अर्थात् देवता-गण । दुल्लहं = दुर्लभ । तीइ = उन (नाचनेवाली) । राउल-विहारे = कुमार-विहार में । रायउल-पियमवीअं = राजा के लिए प्रिय और अद्वितीय । गीअं = गीत को । सोउं = सुनने के लिए । को = कौन । आओ = आया ।

राक्षसकुल एवं राक्षसकुल के शत्रु, अर्थात् देवों के लिए भी दुर्लभ तथा राजकुल के सभी लोगों को प्रिय लगनेवाले, उन नर्त्तकियों एवं गायिकाओं के अद्वितीय (मोहक) गीतों को सुनने के लिए उस कुमार-विहार में कौन-कौन नहीं आया ? (अर्थात्, सभी वर्गों के आबालवृद्ध नर-नारी वहाँ संगीत सुनने के लिए आये ॥७३॥

७४. सक्कय-वारण = संस्कृत-व्याकरण । पाइअ-वायरण = प्राकृत-व्याकरण । पउत्त = प्रयुक्त । सद्द = शब्द । गीए = गीत । आउज्जिअ = मृदंग आदि वाद्य बजानेवाले । रंगे = प्रेक्षागृह के रंगमंच पर । पुण = पुनः । आसि = था । गुणि-पारो = गुणज्ञ ।

वे गीत संस्कृत-व्याकरण एवं प्राकृत-व्याकरण में प्रयुक्त (निर्दोष) शब्दों द्वारा निर्मित थे तथा प्रेक्षागृह के रंगमंच पर वाद्य बजानेवाले वादकों की मण्डली में केवल संगीतपारंगत विशेषज्ञ ही प्रतिष्ठित थे ॥७४॥

७५. तत्थागओ = वहाँ आया हुआ । कालायस-सम = काले लोहे के समान । कालास = पापाशय । अहिअ = अधिक । हिअओ = हृदय । केलि-किसलय = केले के किसलय (नवीन कोंपल) के समान (कोमल) । असोअ-किसल = अशोक का किसलय । कोमलहिओ = कोमलहृदय । आसि = था ।

उस रंगभूमि में आया हुआ काले लोहे से भी अधिक काला हृदयवाला (अर्थात्, कोई भी कठोर, पापी पुरुष) केले एवं अशोक के किसलय के समान कोमल हृदयवाला वन जाता था ॥७५॥

७६. दुग्गावी = दुर्गादेवी । पा-वीढं = पादपीठ (सिंहासन) । दुग्गा-एवीस = दुर्गा देवी के स्वामी (अर्थात्, शंकर) । पायवीढं = सिंहासन । मोत्तुं = छोड़ करके । गण-गंधव्वा = गण, अर्थात् नन्दीगण एवं किन्नर आदि गन्धर्व । तं गीअं = उस संगीत को । सोउं = सुनने के लिए । ओच्छरिया = पहुँच गये ।

उस (मोहक) संगीत को सुनने के लिए दुर्गा देवी (गौरी) और दुर्गा देवी के स्वामी (अर्थात्, शंकर) के सिंहासन को छोड़कर (नन्दी आदि) गण एवं (कन्नर आदि) गन्धर्व भी वहाँ (कुमार-विहार में) आ पहुँचे ॥७६॥

७७. जिण-पाय-वडण = जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में नमस्कार । गुरु-पा-वडणाइँ = गुरु के चरणों में नमस्कार । चइअ = छोड़कर । उब्भजणो = खड़े हुए जन । पुलयंकुरेहि रोमांचयुक्त । उउंबरो = उदुम्बर (नामक वृक्ष) । उंबरेहिँ = उदुम्बर फलों से ।

रंगभूमि में खड़े हुए लोग (उस संगीत को सुनकर) जिनेन्द्र भगवान् के चरणों एवं गुरु के चरणों में नमस्कार करना छोड़कर उसी प्रकार पुलकित हो उठे, जिस प्रकार उदुम्बर-वृक्ष उदुम्बर-फलों से (पुलकित हो जाता है) ॥७७॥

७८. जाव = जबतक । निवो = नृप (राजा) । कय-पूओ = पूजा कर ली । आरत्तिय = आरती । मंगल = मंगल (विधान) । कुणइ = करता है । ता = तबतक । देव-उले = देव-मन्दिर में ।

मरुवय-पूअं = मरुबक-पूजा (पूजाविषयक पश्चात्ताप) को। अणुसोइउं लग्गो = विचार करने लगा।

देव-मन्दिर में पूजा कर चुकने के बाद उस राजा कुमारपाल ने जबतक आरती-मंगल (विधान) नहीं किया, उसी बीच में वह (राजा) मरुवक-पूजा (पूजाविषयक पश्चात्ताप)-सम्बन्धी विचार करने लगा ॥७८॥

७९. मइं = मेरे द्वारा। ताव = तबतक। देउलं = देवकुल, अर्थात् मन्दिर। इमं = यह। निम्मविअं = निर्मापित है। सहल-जीविअमणेण = इससे मेरा जीवन सफल हो गया। सव्व-रिउ = सभी ऋतुएँ। कुसुम-पूआ = पुष्पों से पूजा। नो = नहीं। जइ = यदि। जीअं = जीवं। मे = मेरा। सहलं = सफल।

यह देवालय (कुमार-विहार) मेरे द्वारा बनवाया गया है। इससे मेरा जीवन सफल हो गया है। किन्तु यदि मैंने सभी ऋतुओं में (खिलनेवाले) पुष्पों से यहाँ पूजा नहीं की, तो मेरा जीवन सफल नहीं है ॥७९॥

८०. भणियं = कहा। खे = आकाश में। सासण-देवीए = शासन-देवी द्वारा। एवमेव = इस तरह से। जूर = चिन्ता। आवत्तमाण = तीनों लोकों में फैलनेवाला। जस = यश। तुममेमेअ = तुम इस तरह से। किमत्तमाण-मणो = आर्त्त मन-वाले क्यों हो रहे हो ?

(जब राजा इस प्रकार चिन्तित था) तभी आकाश में (स्थित) शासन-देवी ने (उससे) कहा : "हे त्रिलोकव्यापी यशवाले राजन्, तुम इस प्रकार चिन्ताग्रस्त मत हो। तुम इस प्रकार आर्त्त मन (दुःखी चित्त)-वाले क्यों हो रहे हो ?" ॥८०॥

८१. गुणि = गुणवान्। पावारय = वस्त्र, मण्डल। पारय = पारंगत, पारदर्शी। दुह-अड = दुःख-रूपी कुआँ। चिंतावडेसु = चिन्ता-

रूपी कुएँ में। पडसु=गिर। मा=मत। होही=होगा। उज्जाणं=बगीचा। सइ=सदा। सव्व-रिऊहि=सभी ऋतुओं में। कय=कृत। कुसुमं=फूल।

"हे राजन्, गुणज्ञों की मण्डली में तू ही सर्वश्रेष्ठ पारंगत गुणज्ञ है। अतः, दुःखों के कुएँ में तथा चिन्ता के कुएँ में मत गिर। तेरा उद्यान सदा-सदा के लिए सभी ऋतुओं के पुष्पों से परिपूर्ण हो जायगा" ॥८१॥

८२. आरत्तियं=आरती। काउं=करके। मुक्क-मलो=मल-रहित। अपरिमुत्त=नहीं छोड़ा गया। माउक्को=मृदुता। तव=तप। सत्तं=शक्तिशाली। गुण-सक्कं=गुणों में समर्थ। माउत्त-निहि=मृदुता, अर्थात् कोमलता की निधि। गुरुं=गुरु को। पणओ=प्रणाम किया।

आरती (का विधान) पूरा कर लेने के वाद विकल्प एवं संकल्प-रूपी सभी मलों से रहित मृदु (सरल) भाववाले उस राजा कुमारपाल ने तप करने में समर्थ, गुणसमर्थ तथा विनयनिधि-रूप अपने गुरु को प्रणाम किया ॥८२॥

८३. विंच्छुअ=बिच्छू। डक्क=डंक मारना, काटना। उरग=सर्प। दट्ठ=काटे हुए। जीव-जीवउ=जीवों के लिए जीवन-रूपी मन्त्रौषधि। चरण-रेणु-कणं=चरणों का धूलि-कण। लुक्क=नष्ट कर दिया। कलिं=कलियुग को। लुग्ग-भवं=संसार-भ्रमण को नष्ट कर दिया। समुपासिअ=सम्यक् उपासना करके। तं=उन। गओ=गया। राया=राजा।

जिनके चरणों की धूलि का कण विच्छू और सर्प द्वारा काटे हुए जीवों के लिए जीवन-रूपी मन्त्रौषधि के समान है, जिन्होंने (अपनी

सद्वृत्ति द्वारा) कलियुग अथवा कलह तथा (अभयदान आदि द्वारा) संसार का भ्रमण नष्ट कर दिया है, उन गुरु की सम्यक् उपासना करके वह राजा कुमारपाल (उस कुमार-विहार से) निकला ।।८३।।

८४. लक्खण = लक्षण । पुण्णमखीणं = अंगोपांग से परिपूर्ण । अछीण-गमणं = निर्दोष गति । अझीण = कान्ति-युक्त । तणु = शरीर । तेअं = तेजस्विता । खंधाइ = स्कन्ध, कन्धा आदि । सत्त = सात । पिहुल = पृथुल; विस्तृत । पोक्खर-गंधं = कमल के समान सुगन्धित । धुवावत्तं = ध्रुव नामोंवाली दस संख्याओं के समान दस भँवर ।

(राजा कुमारपाल का घोड़ा शास्त्रोक्त) समस्त प्रशस्त चिह्नों से परिपूर्ण अंगोंवाला, निर्दोष गतिवाला, अखण्ड तेज से युक्त शरीरवाला, स्कन्ध आदि सात सुपुष्ट अंगोंवाला एवं कमल-पुष्पवत् सुगन्धिवाला था और उसके विभिन्न अंगों पर (गणितशास्त्र के) दस अंक के समान निश्चल दस आवर्त्त (चक्र) थे ।।८४।।

८५. खंद-पिउ = कार्त्तिकेय के पिता, अर्थात् शिव । कंद = कार्त्तिकेय । सरीस = समान । अवणीस = पृथिवीपति । जुग्गं = योग्य । असुक्क-रोम-छवि = शुष्कता-रहित, अर्थात् चिकने रोमवाला । अणसुक्ख = जो सूखा नहीं है । मउलि = मुकुट, कलगी । कुसुमं = पुष्प । खेडय = विष । जर = ज्वर । खेड = नष्ट । अंग-रजं = शरीर की धूलि ।

कार्त्तिकेय के पिता, अर्थात् शिव और कार्त्तिकेय, इन दोनों के समान पृथिवीपति (राजाओं) के योग्य वह घोड़ा चिकने एवं सुन्दर रोमोंवाला तथा नवीन प्रफुल्ल पुष्पयुक्त कलगीवाला था और जिसके अंगों की धूलि विष एवं ज्वर के प्रभाव को नष्ट करनेवाली थी ।।८५।।

८६. थाणु=महादेव । पिया=प्रिया (गंगा)। जलपुण्णं=जलवत् पवित्र । अखाणु-वायं=ठूँठ स्थानों पर जो ठोकर नहीं खाता अथवा स्थाणु नामक वायुरोग से रहित । जणेहि=दर्शक जनों द्वारा। दीसंतं=देखा जाता हुआ। पडिखंभि-अट्ट-थंभय=प्रत्येक खम्भे के आगे जैसे दूसरा स्तम्भ खड़ा किया गया हो। थंभिअ-तणु=शरीर स्तम्भ-रूप हो गया। ठंभि-अच्छेहिँ= निर्निमेष आँखों से ।

जो शंकर की प्रिया, अर्थात् गंगा के जल के समान पवित्र था, जो ठूँठ आदि स्थानों पर ठोकर नहीं खाता, अथवा स्थाणु (गठिया) नामक वात-रोग से रहित था, उत्तुंग अट्टालिकाओं के खम्भों के आगे खड़े हुए दर्शक जन (एकटक स्थिर होकर देखने के कारण) दूसरे निश्चल स्तम्भ के समान प्रतीत होते हुए उसे (उस घोड़े को) स्तम्भित (निर्निमेष) दृष्टि से देख रहे थे ॥८६॥

८७. रग्गं=लालवर्ण । पिग=कोयल । रत्त-स्वर=मधुर स्वर। रवि-हय-सुक्कं=सूर्य द्वारा दिया गया शुल्क-रूप घोड़ा। नील-किच्चि-छविं=नीलवर्ण-सा सौन्दर्यवाला। सुंग-करणग्ग= शुल्क ग्रहण करनेवाले विभाग के आगे। चच्चर=चौक, चौराहा। चइत्त=चैत्य (कुमार-विहार)। ठिअ=स्थित। दिट्ठि=दृष्टि। दुच्चज्जं=दुस्त्याज्य ।

लाल वर्णवाला कोयल के समान मधुर स्वरवाला, सूर्य द्वारा प्रदत्त घोड़ा-रूप शुल्क के समान तथा नीले वर्ण की छविवाला वह घोड़ा शुल्क ग्रहण करनेवाले कार्यालय के आगे, कुमार-विहार के चौराहे पर दर्शकों की दृष्टि से दुस्त्याज्य था ॥८७॥

८८. पच्चूहा=प्रभात। पच्चूसं=प्रत्यूष (प्रभातकाल) में। पंच-धारासु=पाँच धाराओं, अर्थात् गति-सम्बन्धी पाँच

विशेषताओं में। अकय=अकृत। निर्वेद=उदासीनता। णच्चा=जान करके। बुज्झा=समझ करके। पिच्छीइ= पृथिवीस्थ। वण्णिअं=वर्णित; सिखाये गये। सिक्ख-विज्जं= शिक्षाविद् (शिक्षा का जानकार)। ति=ऐसा।

प्रत्येक प्रभातकाल में पाँच प्रकार की गतियों के प्रति रुचि रखनेवाला वह प्रशिक्षित घोड़ा प्रशिक्षण-विद्याओं को जानने एवं समझनेवाला होने के कारण पृथिवीस्थ जनों द्वारा प्रशंसित था ।।८८।।

८९. विच्छुअ=बिच्छू। अहिविच्छिअ=सर्प के मूत्र से उत्पन्न बिच्छू। अच्छीविस=जिसकी आँख में विष हो। विसहरण=विष का हरण करनेवाला। छेत्त=शरीर। सेअ=स्वेद (पसीना)। जलं=जल। खुर-ताडण=खुर के आघात से। अखम-छमं= पृथ्वी असमर्थ है। रिक्ख=रीछ। पवंगेस=वानर के स्वामी, अर्थात् सुग्रीव। सम-वेगं=समान वेगवाला।

जिस घोड़े के शरीर का स्वेदजल (पसीना), सामान्य विच्छू, भयंकर विच्छू (सर्प के मूत्र से उत्पन्न विच्छू) एवं अक्षिविष (दृष्टिविष) सर्प के विष को भी दूर करनेवाला था, पृथिवी जिसके खुरों की ताडना सहन करने में अक्षम थी तथा जो गति (वेग) में ऋक्ष (जामवन्त) एवं हनुमान् के स्वामी (सुग्रीव) के समान था ।।८९।।

९०. अवि=भी। रिच्छ=रीछ। सरिच्छेहिँ=समान गतिवाला। सणिच्छयं=एकाग्र चित्तवाला। सच्छणं=उत्सव (आनन्द)- रूप। लोएहिं=लोकों द्वारा। अच्छी-पच्छं=आँखो के लिए प्रिय। लिच्छूहिँ=अभिलाषा (लिप्सा)वाले। पेच्छिअं= देखा। आसमारूढो=अश्व पर आरूढ।

रीछ आदि के समान चपल गतिवाले, एकाग्र चित्तवाले, आँखों के लिए उत्सव-रूप तथा अत्यन्त प्रिय लगनेवाले उस घोड़े पर, दर्शन के

अभिलाषी दर्शक-जनों ने राजा कुमारपाल को आरूढ होते हुए देखा ॥९०॥

९१. **धवलगेहं = निर्मल या उज्ज्वल राजमहल। अइनिच्चलाकिदी = अत्यधिक स्थिर स्वभाववाला। वच्छलो = वत्सल। चुलुग-वंस-दीवओ = चालुक्य-वंश के लिए दीपक के समान। तच्च = तथ्य-रूप। देवय = देवता। वरेण = वरदान से। तक्खण = तत्काल। पहुत्तओ = पहुँचा।**

अत्यन्त स्थिर स्वभाववाला (धैर्यशाली), दीनवत्सल (स्नेही), चालुक्य-वंश के लिए दीपक के समान, सत्यवादी एवं शासनदेवी द्वारा प्रदत्त वरदान से सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त वह राजा कुमारपाल (उस घोड़े पर बैठकर) तत्काल ही अपने धवलगृह (अर्थात्, राजप्रासाद) में पहुँच गया ॥९१॥

●

आचार्य हेमचन्द्र और उनका 'कुमारपालचरित'

आचार्य हेमचन्द्र : संक्षिप्त जीवन-परिचय :

कलिकालसर्वज्ञ **आचार्य हेमचन्द्र** का जन्म अहमदावाद (गुजरात) से लगभग १०० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित धुन्धुका नामक नगर में वि० सं० ११४५ की कार्त्तिक पूर्णमासी की रात्रि में हुआ था। उनके पिता का नाम **चाचिग** तथा माता का नाम **पाहिणी** था। वह शैव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उनके वंश का विकास गुजरात के मोढ़ेरा नामक ग्राम में हुआ, अतः वह मोढ़वंशी नाम से प्रसिद्ध हुए। चाचिग की कुलदेवी का नाम चामुण्डा तथा कुलयक्ष का नाम गोनस था। जब चाचिग को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, तब उन्होंने उक्त देवी-देवता के आद्यक्षर (च एवं ग) लेकर पुत्र का प्रारम्भिक नाम **चांगदेव** रखा।

चांगदेव बड़ा ही होनहार बालक था। एक दिन **देवचन्द्राचार्य** नाम के एक सुप्रसिद्ध जैनमुनि अणहिलपाटन (गुजरात) से प्रस्थान कर अपनी तीर्थयात्रा के प्रसंग में धुन्धुका पधारे और मोढ़वंशियों की बस्ती में ही रुके। शिशु चांगदेव को जब उनका आगमन विदित हुआ, तब वह भी अपनी माता के साथ उनके दर्शनार्थ गया। अवसर पाकर चांगदेव बालसुलभ चंचलता के कारण उक्त आचार्यश्री के आसन पर जा बैठा। आचार्यश्री शरीरशास्त्र के भी महान् ज्ञाता थे। उन्होंने शिशु की आकृति एवं अन्य रेखाचिह्नों को देखकर यह स्पष्ट जान लिया कि यह बालक आगे चलकर अत्यन्त धीर-वीर, युग-प्रवर्त्तक विद्वान्, विचारक एवं योगी-साधक बनेगा। अतः, उन्होंने चांगदेव की माता से अपने लिए उसकी याचना की। चांगदेव के पिता ग्रामान्तर चले

गये थे, इसलिए उसकी माता पहले तो अपने दुलारे बेटे को उन्हें देने के लिए तैयार नहीं हुई, किन्तु बाद में लोगों द्वारा समझाये जाने पर तथा अपने पुत्र के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करके उसने उन्हें सौंप दिया।

आचार्य देवचन्द्र बालक चांगदेव को लेकर शीघ्र ही कर्णावती (गुजरात) पहुँचे और चांगदेव को वहाँ के राज्यमन्त्री **उदयन** को सौंप दिया, जिससे उसके उत्तम पठन-पाठन की व्यवस्था हो सके। उदयन ने बालक के अध्ययन के लिए सभी प्रकार की अनुकूल व्यवस्थाएँ कर दीं। बालक भी एकाग्रवृत्ति से ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन में लग गया।

ग्रामान्तर की यात्रा करके जब चाचिग अपने घर लौटा और पुत्र के समर्पित किये जाने की जानकारी उसे मिली, तब वह आगबबूला हो उठा और रौद्र रूप धारण कर उसे देवचन्द्राचार्य से छीनकर वापस ले आने हेतु कर्णावती पहुँचा और वहाँ उदयन से भेंट कर उसने अपने पुत्र को माँगा। किन्तु, उदयन द्वारा बार-बार समझाये जाने पर उसका क्रोध शान्त हो गया और उसने भी अपने पुत्र के भावी विकास की कल्पना कर उसे वहीं छोड़ दिया। उदयन ने सुयोग्य पुत्र को जन्म देने तथा सुयोग्य गुरु के पास उसे विद्याध्ययन-हेतु भेजने के उपलक्ष्य में चाचिग का सार्वजनिक सम्मान किया। चाचिग भी सन्तुष्ट होकर अपने घर लौट आया।

चांगदेव ने शीघ्र ही गुरुकुल-पद्धति से वहाँ के पाठ्यक्रमानुसार अपना अध्ययन समाप्त किया। बालक की इच्छा के अनुसार आचार्य देवेन्द्र ने उसे दीक्षा प्रदान की और नाम बदलकर उसका दीक्षा-नाम **सोमचन्द्र** रख दिया। सोमचन्द्र कुशाग्रबुद्धि तो था ही, उसने अत्यल्प काल में ही इतिहास, संस्कृति, व्याकरण, योग, दर्शन, साहित्य आदि विषयों का गहन एवं तुलनात्मक अध्ययन पूरा कर लिया। कुछ ही दिनों में उसके ज्ञान एवं चरित्र-निष्ठा का यश सर्वत्र फैल गया।

वि० सं० ११६६ में नागपुर में उसे साधुपद पर दीक्षित कर उसका सूरिपद-महोत्सव मनाया गया। उसी समय उसके गुरु ने नाम का पुनः परिवर्त्तन

कर उसका नाम हेमचन्द्राचार्य रख दिया। भारतीय-वाङ्मय के अध्येता उस प्रखरबुद्धि विद्वान् को इसी नामसे अधिक जानते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ :

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने जीवनकाल में अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें दस प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. योगशास्त्र (स्वोपज्ञ वृहद्वृत्ति-सहित)
२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र
३. परिशिष्टपर्व महाकाव्य
४. द्व्याश्रयकाव्य (संस्कृत-कुमारपालचरित)
५. द्व्याश्रय-काव्य (प्राकृत-कुमारपालचरित)
६. सिद्धहैमशब्दानुशासन (संस्कृत एवं प्राकृत का पंचांग व्याकरण)
७. अभिधानचिन्तामणि
८. अनेकार्थकोश
९. प्रमाणमीमांसा
१०. देशीनाममाला

इन ग्रन्थों का अध्ययन कर भारतीय वाङ्मय के धुरीण विद्वान् डॉ० के० एम्० झवेरी ने लिखा है :

"The towering personality of Grammarian Acharya Hemachandra, not only dominated our literature during his own time but will dominate it for all time."

'कुमारपालचरित', अपरनाम 'द्व्याश्रयकाव्य' की संक्षिप्त कथावस्तु :

'कुमारपालचरित' अथवा 'द्व्याश्रयकाव्य' के रचयिता आचार्य हेमचन्द्र 'कलिकालसंर्वज्ञ' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' के नियमों को सोदाहरण समझाने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की। इसके

प्रथम भाग के सात अध्यायों में संस्कृत-व्याकरण के नियमों को समझाते हुए कवि ने चालुक्यवंशी नरेश **मूलराज** से जैनधर्मोपासक राजा **कुमारपाल** तक के इतिहास का वीस सर्गों में वर्णन किया है। तत्पश्चात्, उसके द्वितीय भाग के आठवें अध्याय के प्रथम छह सर्गों में महाराष्ट्री-प्राकृत-व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करते हुए कुमारपाल के युद्ध आदि का चित्रण किया है। शेष अन्तिम दो सर्गों में शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची और अपभ्रंश-भाषा के नियम एवं उदाहरण दिये गये हैं। 'कुमारपालचरित' के संस्कृत-द्व्याश्रयकाव्य के टीकाकार **अभयतिलकगणी** और प्राकृत-द्व्याश्रय-काव्य के टीकाकार **पूर्णकलशगणी** हैं।

प्राकृत-कुमारपालचरित के प्रथम सर्ग में अणहिलपुर नगर का वर्णन है, जहाँ चालुक्यवंशी राजा कुमारपाल राज्य करता था। उसने अपने पुरुषार्थ-पराक्रम से पृथिवी-मण्डल को जीत लिया था। वह निष्पक्ष होकर प्रजाजनों पर शासन करता था। उसकी जीवनचर्या अत्यन्त सन्तुलित थी। महाराष्ट्र आदि देशों से समागत स्तुति एवं प्रशस्ति-पाठक मधुर संगीत-ध्वनि द्वारा उसे प्रातःकाल में जगाते थे। जागने के बाद वह प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करता था। तत्पश्चात् वह अपने मस्तक पर तिलक लगाकर धृष्ट एवं अधृष्ट सभी लोगों की विज्ञप्तियाँ सुना करता था। इसके बाद वह मातृगृह में जाकर लक्ष्मी की पूजा करता और व्यायाम-हेतु अपनी व्यायामशाला में प्रवेश करता था।

दूसरे सर्ग में व्यायाम के विविध प्रकार बताये गये हैं। कुमारपाल हाथी पर सवार होकर जिन-मन्दिर में दर्शनार्थ जाता और वहाँ जिनेन्द्र-स्तुति एवं पूजा आदि सम्पन्न करके वहाँ के संगीत-सम्मेलन में भाग लेकर अपने धवलगृह राजप्रासाद में लौट आता था।

तीसरे सर्ग की कथा है कि वह राजा क्रीडा के निमित्त अपने उद्यान में जाता था। इस प्रसंग में कवि ने वसन्त ऋतु का विस्तृत आलंकारिक वर्णन

किया है। इसी प्रसंग में वाराणसी के ठगों की भी चर्चा हुई है। रसिक युवक-युवतियों के विविध केलि-कौतुकों का भी सरस वर्णन हुआ है।

चतुर्थ सर्ग में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है। इस वर्णन में भी लेखक ने अपनी काव्यकुशल भावुकता का विस्मयकारी परिचय दिया है।

पाँचवें सर्ग में वर्षा, हेमन्त एवं शिशिर ऋतुओं का वर्णन है। इसके एक प्रसंग में पद्मावती देवी की पूजा की तैयारी का भी वर्णन आया है। उद्यान-क्रीडा से लौटकर कुमारपाल अपने राजभवन में आते ही स्वल्पाहार के वाद सन्ध्या-वन्दन और उसके वाद वह विद्याध्ययन करता था, तत्पश्चात् विद्यार्थियों से मिलता था। इसी सर्ग में कवि ने एक प्रसंग में चकवा-चकवी पक्षियों के विरह का भी मार्मिक वर्णन किया है।

छठे सर्ग में चन्द्रोदय का वर्णन है। राजा कुमारपाल जव सभा-मण्डप में बैठता था, तभी राजपुरोहित के मन्त्रपाठ करते ही विभिन्न वाद्य वजने लगते थे और उसी समय गणिकाएँ उसकी आरती उतारने एवं नृत्य करने हेतु थालों में दीपक सजाकर उपस्थित हो जाती थीं। सभा-मण्डप में राजा कुमारपाल के आदेश से श्रेष्ठिगण, सार्थवाह, अनुयायी राजागण एवं अन्य सभासद अपना आसन ग्रहण करते थे। राजदूतों का आसन कुछ दूरी पर रहता था। सान्धिविग्रहिक राजा के पीछे से उसके वल-पराक्रम आदि का प्रशस्ति-गान करता था।

सातवें सर्ग की कथा है कि सोकर उठने के वाद राजा कुमारपाल अपने परमार्थ का चिन्तन करता था। एक प्रसंग में श्रुतिदेवी द्वारा राजा कुमारपाल को साक्षात् दर्शन दिये जाने का भी उल्लेख है।

आठवें सर्ग में श्रुतिदेवी के उपदेशों का संग्रह किया गया है। इस प्रकार 'कुमारपालचरित' अपनी विषयवस्तु एवं अलंकृत वर्णन-शैली की दृष्टि से, महाकाव्य के कतिपय अपेक्षित गुणों के न रहने पर भी, महाकाव्य की कोटि में प्रतिष्ठित है।

'कुमारपालचरित' का मूल वर्ण्य विषय, अथवा राजा कुमारपाल की दैनिक जीवनचर्या का संक्षिप्त वर्णन :

'कुमारपालचरित' एक शास्त्रीय महाकाव्य है, जिसका प्रणयन आचार्य हेमचन्द्र ने कठोर साहित्य-साधना के वाद अपनी प्रौढ लेखनी से किया है। इसका अपर नाम 'द्व्याश्रयकाव्य' भी है। 'द्व्याश्रयकाव्य' होने के कारण इसमें व्याकरण के नियमों के साथ-साथ काव्यात्मकता भी प्रचुर मात्रा में वर्त्तमान है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। लेखक ने इसमें सम्राट् कुमारपाल की एक दिन की जीवनचर्या का वर्णन करके भी उसे महाकाव्य का रूप प्रदान किया। इस ग्रन्थ की यही विशेषता है।

इस महाकाव्य के अनुसार, सम्राट् कुमारपाल चालुक्यवंशी नरेश था। उसने प्रवल पुण्य-प्रताप एवं पराक्रम से अपने राज्य की सीमा का विस्तार करके सभी को आश्चर्य में डाल दिया था। उसकी राजधानी अणहिलपुर (गुजरात-प्रान्त में स्थित) थी। उसका जीवन बहुत ही सन्तुलित था।

कवि के कथनानुसार, वह सूर्योदय के पूर्व ही अपने चारणों द्वारा गाई हुई स्तुतियाँ सुनकर जाग उठता था। फिर, वह अपने नित्यकर्म से निबटकर माथे पर तिलक लगाता और व्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त करता था। फिर, वह राज्यसभा में आये हुए सभी लोगों की प्रार्थनाएँ सुनता और उनपर अपना निर्णय देकर मातृगृह में चला जाता और वहाँ लक्ष्मीपूजा करता था। तत्पश्चात् वह अपनी व्यायामशाला में जाकर व्यायाम किया करता था। इन कार्यों के बाद वह हाथी पर सवार होकर जिन-मन्दिर में दर्शनों के लिए जाता था। वहाँ भगवान् की विधिवत् पूजा करने के बाद वह संगीत के कार्यक्रमों में भाग लेता और फिर अपने धवलगृह में लौट आता था।

दोपहर में राजा कुमारपाल उद्यान-क्रीडा के लिए जाता था। इस प्रसंग में कवि ने वसन्त के आगमन पर उस समय के जल-विहार का मनोरम

वर्णन किया है। इसके साथ-साथ वर्षा, हेमन्त, शिशिर आदि ऋतुओं का भी मोहक चित्रण किया है। उद्यान से लौटकर राजा अपने राजभवन में आ जाता और सन्ध्यावन्दन में लग जाता था। जब वह पुनः अपने सभा-मण्डप में आकर बैठता, तभी राजपुरोहित मन्त्र का उच्चारण करता था, विविध प्रकार के वाद्य बजाये जाते थे, गणिकाएँ थालों में दीपक सजाकर आरती-हेतु उपस्थित हो जाती थीं और तत्पश्चात् बाहर से आये राजा, मन्त्री, सेनापति, सार्थवाह आदि प्रमुख सभासद राजा के आदेश से राजसभा में आसन ग्रहण करते थे। आगन्तुक राजा उसका यशोगान करते थे। फिर, राज्य की समस्याओं पर विचार-विमर्श कर राजा अपने शयनकक्ष में चला जाता था।

आचार्य हेमचन्द्र एक तेजस्वी, मनस्वी एवं स्वाभिमानी महाकवि थे। उन्होंने अपने शिष्य चालुक्यवंशी सम्राट् कुमारपाल को एक ओर शत्रुओं से राज्यसीमा की सुरक्षा का उपदेश किया, तो दूसरी ओर राज्य के न केवल नर-नारियों, अपितु प्राणिमात्र की सुरक्षा एवं सहायता का भी उपदेश किया, जिसका कुमारपाल ने अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि कुमारपाल का जीवन प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलित और आदर्श बना रहा। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य था। उसकी जीवनचर्या अत्यन्त आदर्श एवं अनूठी थी। यही कारण है कि आचार्य हेमचन्द्र ने अगली पीढ़ी को भी सुशिक्षित करने हेतु उसकी जीवनचर्या का चित्रण इस विशाल चरित-ग्रन्थ के माध्यम से किया।

'कुमारपालचरित' का महाकाव्यत्व :

काव्य की कसौटी पर कसने से 'कुमारपालचरित' एक कलावादी काव्य सिद्ध होता है। यद्यपि वह व्याकरण-सम्मत नियमों एवं उनके उदाहरणों से बोझिल है और उसकी कथावस्तु का आयाम भी नातिदीर्घ है, तथापि समीक्षा-शास्त्रियों ने उसे प्राकृत के प्रमुख महाकाव्यों की कोटि में प्रतिष्ठित किया है;

क्योंकि उसमें उसके प्रायः सभी शास्त्रीय लक्षण—जैसे कथा का सर्गों में विभाग; उदात्त, धीरललित एवं वीर-पराक्रमी नायक; शृंगार एवं वीर रस की प्रधानता, युद्ध, नदी, नद, सरोवर, उद्यान-क्रीडा, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वन-उपवन आदि का वर्णन, सर्गान्त में छन्द-परिवर्त्तन; संवाद तथा विविध अलंकार, रस एवं छन्दों के प्रयोग आदि उपलब्ध हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र-परम्परा के अनुसार, कवि ने ग्रन्थारम्भ में सर्वप्रथम मंगलाचरण करके इष्ट देवी-देवताओं का स्मरण किया है। तत्पश्चात् अणहिलपुर (गुजरात के प्रमुख नगर) का वर्णन करते हुए अपनी विलक्षण काव्य-प्रतिभा का विस्मयकारी परिचय दिया है। अतिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से कवि कहता है : "जिस नगर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं अन्य देवताओं का निवास है, वह नगर अपनी महिमा से सुरपुर (इन्द्रलोक) को भी तिरस्कृत करता है।" (दे० गाथा-सं० १।२६) यहाँ अणहिलपुर की महिमा द्वारा इन्द्रलोक के महत्त्व को तिरस्कृत बताया गया है।

कवि ने नायक कुमारपाल के पौरुष-पराक्रम, शील-सौन्दर्य, समृद्धि, उदारता, दानशीलता तथा धर्मभावना, भक्ति एवं सदाचरण का वर्णन करते हुए कहा है कि "उसकी तुलना न इन्द्र कर सकता है, न अर्जुन और न नारायण ही; क्योंकि कुमारपाल तीनों लोकों के समस्त प्राणियों को अभयदान देने के कारण सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुन्दर है। इन्द्र आदि देवता बल-पराक्रम में भले ही कुमारपाल से कुछ समानता कर लें, किन्तु भोग से अविरत रहने के कारण वे उसके सभी गुणों में समानता नहीं कर सकते।" कवि ने उपमालंकार के माध्यम से यहाँ कुमारपाल की शक्ति, प्रतिभा, सदाचरण, त्यागवृत्ति आदि का सुन्दर वर्णन किया है। (दे० गाथा-सं० १।४५)

अणहिलपुर के निवासियों की विवेकशीलता तथा उदार दानशीलता से कवि अत्यधिक प्रभावित था। वह पूर्णोपमालंकार के माध्यम से कहता है कि "वहाँ के नागरिक अपनी धन-सम्पत्ति को चंचल एवं नश्वर समझकर मधुर वाणी से भूखे-प्यासे एवं जरूरतमन्द व्यक्तियों को उसी प्रकार दान देते हैं,

जिस प्रकार शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु में मलिन होनेवाली दिशाओं को स्वच्छता प्रदान करती है। इसी प्रकार, उस नगर के चिकित्सक भी करुणापूर्वक रोगियों की चिकित्सा करते थे और स्वास्थ्य लाभकर रोगी उसी प्रकार प्रसन्न रहते थे, जिस प्रकार शरत्काल में दिशाएँ।" (दे० गाथा-सं० १।९)।

कवि ने अणहिलपुर के नागरिकों के सौन्दर्य एवं सौभाग्य का वर्णन करते हुए बताया है कि "उस नगर के गौर वर्णवाले रसिक युवक एवं विलेपनयुक्त मृगनयनी युवतियाँ अपनी-अपनी अट्टालिकाओं पर रमण करती हुई ऐसी लुभावनी लगती थीं कि देव एवं नागकुमार उन्हें आश्चर्यचकित चित्त से देखते ही रह जाते थे (अतिशयोक्ति अलंकार)।" (दे० गाथा-सं० १।१३)

कवि की एक दूसरी मौलिक कल्पना देखिए। वह अणहिलपुर की समृद्धि एवं शोभा-वर्णन के प्रसंग में कहता है कि "उस नगर के कलापूर्ण भवनों में शंख, मुक्ताफल, हीरे आदि रत्न जड़े हुए हैं, जो निरन्तर प्रकाश करते हैं। उन्हें देखकर कवि कहता है कि उन रत्नों की उज्ज्वल किरणें कलंकी चन्द्रमा को भी (उसके प्रकाश की कमी को पूरा करके) निष्कलंक बना देती थीं।" (दे० गाथा-सं० १।१६)

ऋतु-वर्णन के प्रसंग में कवि ने वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुओं का संक्षिप्त, किन्तु मोहक वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन-प्रसंग में कवि ने कुमारपाल के सुसज्जित एवं सुविधा-सम्पन्न स्नानगृह का वर्णन किया है। इस प्रसंग में उसने मकराकृतिवाली जल-प्रणालियों तथा शालभंजिकाओं के माध्यम से जल के फव्वारों की चर्चा की है। स्नानगृह का यह वर्णन काल्पनिक नहीं, बल्कि यथार्थ है; क्योंकि गुजरात के उत्खनन तथा अन्य प्राचीन राजभवनों एवं अन्य कलाकृतियों में फव्वारों के वैसे रूप आज भी देखे जा सकते हैं।

स्नानगृह के एक झरने से गिरती हुई जलधारा को देखकर कवि पूछता है कि यह दधिधारा है अथवा मधुधारा। वस्तुतः, जलधारा के श्वेतवर्ण होने से

कवि उसे दधिधारा कहता है, किन्तु गहरे जल में गिरते ही उसके मधु के समान दिखाई देने से उसे मधुधारा कह देता है।

'कुमारपालचरित' में कवि ने प्रसंगवश, शृंगार, वीर एवं शान्त रसों की अभिव्यंजना की है। छन्दों में उसने गाथा के अतिरिक्त वदनक, दोधक, इन्द्रवज्रा, मनोरमा आदि छन्दों के प्रयोग किये हैं। सर्गान्त में छन्द का परिवर्त्तन भी किया गया है। सम्पूर्ण कथा आठ सर्गों में विभक्त है। कथावस्तु, कथनोपकथन, भावव्यंजना एवं वस्तुवर्णन सन्तुलित एवं काव्योचित हैं। अपने इन्हीं लक्षणों के कारण 'कुमारपालचरित' प्राकृत-साहित्य के महाकाव्यों में परिगणित है।

द्व्याश्रयकाव्य के दोष :

कतिपय प्रतिभाशाली कवि व्याकरण के नियमों एवं उनके उदाहरणों को काव्य के रूप में प्रयुक्त कर काव्यग्रन्थ की रचना करते हैं। इस प्रकार की काव्यविधा को लक्षणशास्त्र के आचार्यों ने 'द्व्याश्रयकाव्य' की संज्ञा प्रदान की है। इस दिशा में सर्वप्रथम संस्कृत के **महाकवि भट्टि** ने 'भट्टिकाव्य' की रचना की, जो उक्त द्व्याश्रयकाव्य की कोटि का ही काव्य है। इसमें उन्होंने संस्कृत-व्याकरण के नियमों को प्रयुक्त करने के साथ-साथ रामकथा का प्रवाहपूर्ण वर्णन किया है और इस प्रकार महाकवि भट्टि ने व्याकरण की नीरसता में साहित्य की सरलता घोलकर साहित्य के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया था। यह काव्यविधा निश्चय ही वहुत क्लिष्ट है, फिर भी आचार्य हेमचन्द्र ने इसका अनुकरण किया तथा उन्होंने भी द्व्याश्रयकाव्य (अपर नाम 'कुमारपालचरित') की रचना की। इसमें उन्होंने स्वरचित व्याकरण-ग्रन्थ के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए चालुक्यवंशी राजा कुमारपाल के चरित का भी वर्णन किया है।

द्व्याश्रयकाव्य का सबसे वड़ा दोष यह है कि वह व्याकरण के नियमों से अतिशय बोझिल रहता है। नियमों की प्रमुखता के कारण मानवीय

मनोवेगों का प्रवाहपूर्ण सहज शैली में विस्तृत चित्रण सम्भव नहीं हो पाता। उसमें शब्दों की कलाबाजी तो सम्भव है, किन्तु हृद्गत भावों का मर्मस्पर्शी चित्रण सम्भव नहीं। **मुनि जिनविजय** ने ठीक ही कहा है कि "द्व्याश्रयकाव्य में कवित्व की ऊँची उड़ान का अभाव है। उसमें हृदयस्पर्श करने की क्षमता नहीं है; क्योंकि उसका प्रधान लक्ष्य है—व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करना।"

प्राकृत के क्षेत्र में महामति हेमचन्द्र का द्व्याश्रय-काव्यलेखन-सम्बन्धी उक्त प्रयोग सर्वप्रथम ही था, किन्तु विधा की क्लिष्टता तथा तीव्रता से हृदयस्पर्श करने की क्षमता के प्रायः अभाव के कारण वह परम्परा अधिक लोकप्रिय न हो सकी।

'सिद्धहैमशब्दानुशासन' :

आचार्य हेमचन्द्र-कृत संस्कृत एवं प्राकृत-व्याकरणग्रन्थ का पूरा नाम 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' है। इसमें तीन शब्द हैं—सिद्ध, अर्थात् **सिद्धराज जयसिंह**; हेम, अर्थात् आचार्य हेमचन्द्र और शब्दानुशासन, अर्थात् व्याकरण-ग्रन्थ। पूरे शीर्षक का अर्थ है—आचार्य हेमचन्द्र द्वारा लिखित तथा सिद्धराज जयसिंह को समर्पित व्याकरण-ग्रन्थ। सिद्धराज जयसिंह सुप्रसिद्ध चालुक्यवंश का प्रतापी राजा था। उसने सन् १०९३ से ११४२ ई० तक गुजरात, सौराष्ट्र एवं मालवा तथा पश्चिमी भारत के कुछ प्रदेशों पर शासन किया था। उसने अपने शासनकाल में कृषि के विकास के लिए अनेक बाँध बनवाकर कई नहरें भी निकलवाई थीं।

उज्जयिनी-विजय के क्रम में उसे अनेक बहुमूल्य सामग्री के साथ एक विशाल ग्रन्थागार भी मिला था, जिसमें परमारवंशी राजा भोज द्वारा लिखित एक महत्त्वपूर्ण व्याकरण-ग्रन्थ भी मिला था। वह ग्रन्थ 'मालव-ग्रन्थ' के नाम से भी प्रसिद्ध था। उसे देखकर सिद्धराज जयसिंह के मन में भी यह भावना

उठी कि 'मालव-ग्रन्थ' के समान ही राष्ट्रीय मूल्य का एक 'गुजरात-ग्रन्थ' भी लिखा जाना चाहिए। राज्यसभा में इस प्रस्ताव के आने पर सभी ने एक स्वर से इस कार्य के लिए आचार्य हेमचन्द्र का नाम प्रस्तावित किया। सिद्धराज द्वारा प्रार्थना किये जाने पर हेमचन्द्र ने भी उसके लिखने की स्वीकृति प्रदान कर दी। राजा ने उन्हें अपने राज्य में अत्यन्त सम्मानपूर्वक लेखन-कार्यहेतु सभी सुविधाएँ एवं सामग्री उपलब्ध करा दी।

आचार्य हेमचन्द्र ने राजा सिद्धराज जयसिंह की भावना के अनुरूप ही एक व्याकरण-ग्रन्थ आठ अध्याय एवं बत्तीस पदों में लिखकर शीघ्र ही समाप्त कर दिया। राजा की ज्ञान-पिपासा एवं भक्ति-भावना से प्रभावित होकर आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी उस कृति का नाम 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' रखा।

उक्त ग्रन्थ का राजसभा में वाचन किया गया। सभी विद्वान् मन्त्रमुग्ध हो उठे और सभी की सम्मति से उस ग्रन्थराज को 'गुजरात का गौरवग्रन्थ' के रूप में स्वीकृत किया गया। राजा ने तत्काल ही ३०० कुशल प्रतिलिपिकारों को आमन्त्रित कर उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ कराईं तथा देश-विदेश के प्रमुख ग्रन्थागारों को भेंटस्वरूप भिजवाईं।

उक्त ग्रन्थ का प्रथम अध्येता था **कक्कल कायस्थ**, जिसे राजा सिद्धराज जयसिंह ने एक विशेष समारोह में सम्मानित भी किया था। 'प्रभावकचरित' नामक इतिहास-ग्रन्थ में भी कक्कल को महावैयाकरण एवं कुशल शिक्षक के रूप में स्मरण किया गया है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् **कीलहॉर्न** ने भी उसके व्याकरण-नैपुण्य की प्रशंसा की है।

आज भले ही इस ग्रन्थ के लेखक एवं प्रेरक इस संसार में नहीं हैं, किन्तु 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' की धवल कीर्त्ति के रूप में वे दोनों सदा जीवित रहेंगे।

वैयाकरण के रूप में आचार्य हेमचन्द्र :

'सिद्धहैमशब्दानुशासन' संस्कृत एवं प्राकृत-व्याकरण का उच्च श्रेणी का ग्रन्थ माना गया है। उसके माध्यम से आचार्य हेमचन्द्र ने **महर्षि पाणिनि,**

भट्टोजि दीक्षित एवं **आचार्य भट्टि** का कार्य अकेले ही सम्पन्न कर दिया है। उक्त व्याकरण-ग्रन्थ में हेमचन्द्र ने सूत्रों की वृत्ति के साथ-साथ शब्द-प्रक्रिया एवं उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। उनका संस्कृत-शब्दानुशासन सात अध्यायों में तथा प्राकृत-शब्दानुशासन उसके अन्तिम एक अध्याय में सुव्यवस्थित है। इस प्रकार, कुल आठ अध्यायोंवाली अष्टाध्यायी में उन्होंने अपना उक्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सम्पूर्ण किया है।

व्याकरणशास्त्रियों की दृष्टि में वही व्याकरण सर्वश्रेष्ठ माना गया है, जो पंचांग-समन्वित हो। वे पाँच अंग ये हैं: १. सूत्रपाठ; २. धातुपाठ; ३. गणपाठ; ४. उणादि-प्रत्यय एवं ५. लिंगानुशासन। 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' में इन पाँचों अंगों का समावेश मिलता है।

आचार्य हेमचन्द्र कुशल भाषाशिल्पी थे। उन्होंने अपने उक्त व्याकरण को पाणिनि-व्याकरण की अपेक्षा अधिक सरल बनाने का प्रयास किया है। अतः, संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पाणिनि-व्याकरण के प्रायः समस्त विचारकों एवं व्याख्याताओं ने मिलकर उसे सर्वांगीण बनाने में जो कार्य किया है, वह कार्य हेमचन्द्र ने अकेले ही सम्पन्न कर दिया। उनकी इस अद्‌भुत प्रतिभा एवं कार्यक्षमता को देखकर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि संस्कृत एवं प्राकृत-भाषा का अन्य कोई भी वैयाकरण हेमचन्द्र की समकक्षता नहीं प्राप्त कर सका।

आचार्य हेमचन्द्र की संज्ञाएँ अन्य वैयाकरणों की अपेक्षा अधिक सटीक और उपयोगी हैं। वह सर्वत्र व्यावहारिक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। उन्होंने कम-से-कम संज्ञाओं से काम चला लेने का प्रयत्न किया है। स्वरों का संज्ञाओं में वर्गीकरण करके उन्होंने ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, नाम, समान और सन्ध्यक्षर ये सामान्य संज्ञाएँ प्रस्तुत की हैं। व्यंजनों के विभाग-प्रसंग में घुट् वर्ग, घोष, अघोष, अन्तःस्थ एवं शिट् ये छह संज्ञाएँ बताई हैं।

पाणिनि-व्याकरण के टीकाकार **कात्यायन** ने 'एकतिङ् वाक्यम्' द्वारा वाक्य की परिभाषा निबद्ध की है, जब कि आचार्य हेमचन्द्र ने 'सविशेषणा-

ख्यात् वाक्यम्' में अव्यय, कारक, कारक-विशेषण तथा क्रियाविशेषणों का साक्षात् अथवा परम्परा से सम्बन्ध माना है। अतः, हेमचन्द्र की वाक्य-परिभाषा कात्यायन की वाक्य-परिभाषा से अधिक व्यापक, सरल एवं स्पष्ट है। इसी प्रकार हेमचन्द्र ने सन्धि के अनुशासन में भी अन्य वैयाकरणों की अपेक्षा अधिक सरलता एवं सुस्पष्टता प्रदर्शित की है। अपादान-कारक के जिन अनुशासनों को पाणिनि ने सात सूत्रों में निबद्ध किया है, हेमचन्द्र ने उसको केवल एक ही सूत्र में सन्निविष्ट कर उसे अधिक सरल बनाया है।

स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण में भी हेमचन्द्र की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। पाणिनि ने 'कुमारी' आदि शब्दों की सिद्धि के लिए 'वयसि प्रथमे' नामक सूत्र की रचना की है, जिसका तात्पर्य है कि प्रथमावस्था के सूचक शब्द से स्त्रीलिंग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय होता है। किन्तु, हेमचन्द्र ने प्रथमावस्था के अतिरिक्त भी अन्य अवस्थाओं का संग्रह करने के लिए 'वयस्यन्ते' सूत्र लिखा, जिसके अनुसार 'कुमारी' शब्द के अतिरिक्त 'किशोरी' और 'वधूटी' शब्द भी सिद्ध हो जाते हैं।

प्राकृत-शब्दानुशासन में हेमचन्द्र ने **वररुचि** की अपेक्षा भी अनेक मौलिकताएँ प्रदर्शित की हैं। उन्होंने प्राकृत-भाषा का सर्वांगीण अनुशासन ही लिख दिया है, जिसमें सरलता, सुस्पष्टता एवं वैज्ञानिकता है। धात्वादेश-प्रकरण में हेमचन्द्र ने अपनी पूरी मौलिकता प्रदर्शित की हैं। तद्धित और कृदन्त-प्रत्ययों का अनुशासन वररुचि की अपेक्षा हेमचन्द्र का अधिक विस्तृत है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण **चण्ड** की अपेक्षा भी हेमचन्द्र ने अनेक मौलिकताएँ प्रदर्शित की हैं। चण्ड का 'प्राकृतलक्षण' नामक व्याकरण-ग्रन्थ, केवल १९५ सूत्रों में निबद्ध है, जब कि हेमचन्द्र ने उससे कई गुने अधिक सूत्र लिखे हैं, साथ ही शैली भी अधिक सरल एवं स्पष्ट है।

प्राकृत-व्याकरण में 'गणपाठ' की परम्परा का प्रारम्भ आचार्य हेमचन्द्र ने किया। यद्यपि **लक्ष्मीधर**, **मार्कण्डेय** आदि ने भी अपनी रचनाओं में उसे

निवद्ध लिया है, तथापि हेमचन्द्र का यह प्रकरण अन्य शव्दानुशासकों की अपेक्षा विशिष्ट है।

भाषावैज्ञानिकों के अनुसार प्राचीन एवं आधुनिक दोनों ही प्रकार की ध्वनियों की विधिवत् वैज्ञानिक विवेचना 'सिद्धहैमशव्दानुशासन' में पाई जाती है। अतः, भाषाविज्ञान एवं व्याकरण के क्षेत्र में हेम की दौड़ वहुत लम्बी है। उनका व्याकरण सर्वांगपूर्ण है। उन्होंने अधिकांशतः समकालीन देशी भाषाओं का अनुशासन निवद्ध किया है। महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची और विविध अपभ्रंशों के अनुशासन को क्रमवद्ध रूप में प्रस्तुत करनेवाला प्रामाणिक ग्रन्थ 'सिद्धहैमशव्दानुशासन' ही है। इसके अतिरिक्त, उसमें उदाहरण के रूप में जिन दोहों को हेमचन्द्र ने प्रस्तुत किया है, वे भी साहित्य के लिए अमूल्य निधि हैं। उनके द्वारा संकलित इन दोहों के स्रोत क्या हैं, यह आज भी अज्ञात है। इस माध्यम से उन्होंने प्राचीन लुप्त साहित्य की कुछ कड़ियों को भी सुरक्षित रखा है।

संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि महर्षि पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, वररुचि, भट्टि और भट्टोजि दीक्षित के व्यक्तित्वों के दर्शन आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व में एक साथ ही हो जाते हैं। साहित्य एवं व्याकरण के क्षेत्र में हेमचन्द्र ने जो कार्य किया, वह अपूर्व और अनुपम है।